अंबपाली

अंबपाली

कक्षा 11 की ऐच्छिक हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक

लेखक

रामवृक्ष बेनीपुरी

संयोजक

चन्द्रा सदायत

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण

ISBN 81-7450-077-4

सितंबर 2002

भाद्रपद 1924

PD 150T MK

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस श्री अरविंद मार्ग **नई दिल्ली 110 016**	108, 100 फीट रोड, होस्डकेरे हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज **बैंगलूर 560 085**	नवजीवन ट्रस्ट भवन डाकघर नवजीवन **अहमदाबाद 380 014**	सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस 32, बी.टी. रोड, सुखचर **24 परगना 743 179**

प्रकाशन सहयोग

संपादन : मीरा कांत

उत्पादन : प्रमोद रावत

राजेंद्र चौहान

सज्जा एवं आवरण

कल्याण बैनर्जी

रु. 21.00

एन.सी.ई.आर.टी. [illegible] 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

[illegible] विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110[illegible]

[illegible] प्रिंटिंग प्रेस, [illegible] नगर 7, बिहारी कालोनी शाहदरा, दिल्ली 110032 द्वारा मुद्रि[illegible]

आमुख

शिक्षा एक निरंतर विकासशील प्रक्रिया है इसलिए नवीन सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नए पाठ्यक्रम के विकास और नई पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य सतत् चलता रहता है। सन 2000 में परिषद् ने **विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा** तैयार की और उसके आधार पर विभिन्न पाठ्यक्रमों में संशोधन एवं परिवर्तन किए गए। नवनिर्मित पाठ्यक्रमों के अनुरूप ही परिषद् ने नवीन पाठ्यपुस्तकें तैयार करने का निश्चय किया।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी विषय का व्यवस्थित अध्ययन प्रारंभ करते हैं और विषय की गहराई से भी परिचित होते हैं। विषय के गहन एवं विशद अध्ययन के साथ विद्यार्थियों में पठन रुचि के विकास के लिए पूरक पाठ्यपुस्तकों का निर्माण भी परिषद् द्वारा किया जाता रहा है। ऐच्छिक हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों में विकसित होती हुई साहित्यिक अभिरुचि को सजग बनाने और उनकी पढ़ने की गति को तेज़ करने में पूरक पाठ्यपुस्तकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यार्थियों की स्वतंत्र पठन की प्रवृत्ति को जाग्रत करने और उनकी भाषिक तथा साहित्यिक योग्यताओं के विकास के उद्देश्य से कक्षा ग्यारह में पूरक पाठ्यपुस्तक के रूप में रामवृक्ष बेनीपुरी का नाटक **अंबपाली** प्रस्तावित किया जा रहा है।

ऐच्छिक हिंदी का पाठ्यक्रम बनाते समय यह सोचा गया था कि हिंदी साहित्य की किसी एक महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय विधा का परिचय पूरक पाठ्यपुस्तक के माध्यम से विद्यार्थियों को कराया जाए। नाटक अत्यंत लोकप्रिय साहित्यिक विधा है जिससे पाठक सीधे जुड़ता है और उसमें सहभागी बनता है। **अंबपाली** के अध्ययन द्वारा विद्यार्थी नाटक की कथावस्तु,

संवाद योजना और अभिनय के तत्त्वों को समझेंगे, उनमें सृजनात्मक प्रतिभा का विकास होगा और वे अन्य लेखकों की महत्त्वपूर्ण कृतियों को पढ़ने की ओर भी प्रेरित होंगे।

बौद्धकालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित यह नाटक आज भी बहुत प्रासंगिक है। यह नाटक देशप्रेम, राष्ट्रीय एकता और जनतांत्रिक मूल्यों के प्रति पाठकों को निष्ठावान बनाता है और उन्हें भारत की मूल्यवान सांस्कृतिक विरासत से भी परिचित कराता है। विद्यार्थियों की वय, रुचि और योग्यता को ध्यान में रखकर इस पुस्तक का चयन किया गया है। रोचकता और साहित्यिकता की दृष्टि से भी यह एक महत्त्वपूर्ण नाटक है।

हम स्वर्गीय रामवृक्ष बेनीपुरी के परिवारजनों के प्रति आभारी हैं जिन्होंने इस नाटक को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने तथा उसे संक्षिप्त और संपादित करने की अनुमति प्रदान की है।

अंबपाली की संस्तुति और संपादन में हमें राष्ट्रीय स्तर के विषय-विशेषज्ञों, अधिकारी विद्वानों और शिक्षकों का सहयोग प्राप्त हुआ है। परिषद् उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

आशा है हिंदी साहित्य तथा भाषा का स्तर ऊँचा उठाने में तथा विद्यार्थियों की साहित्यिक चेतना को विकसित करने में यह पुस्तक उपादेय सिद्ध होगी।

इस पुस्तक के विषय में अध्यापकों और विद्यार्थियों के सुझावों का परिषद् सदैव स्वागत करेगी।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

मई 2002
नई दिल्ली

भूमिका

रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म सन 1899 में गाँव बेनीपुर, ज़िला-मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार) में हुआ था। बचपन में ही उनके माता-पिता का निधन हो गया था, इसलिए उनका बचपन बड़ी कठिनाइयों में बीता। अनेक कष्ट सहकर उन्होंने किसी तरह से मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की। सन 1920 में असहयोग आंदोलन के प्रारंभ होते ही वे अध्ययन छोड़कर राष्ट्रसेवा में जुट गए। उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदारी निभाई तथा वे कई बार जेल भी गए। उनका निधन सन 1968 में हुआ।

रामवृक्ष बेनीपुरी एक प्रतिभाशाली पत्रकार थे। उन्होंने **तरुण भारत, किसान मित्र, बालक, युवक, योगी, जनता, जनवाणी, नई धारा** आदि दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अपने लेखन और संगठनात्मक कार्यों द्‌वारा वे निरंतर हिंदी की सेवा करते रहे।

बेनीपुरी बहुमुखी प्रतिभा के लेखक थे। उन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी, यात्रा-वृत्तांत, संस्मरण, रेखाचित्र, शब्दचित्र, निबंध आदि सभी गद्‌य विधाओं में महत्त्वपूर्ण लेखन किया है। उनका रचनाकर्म इतना व्यापक और वैविध्यपूर्ण है कि उन्हें किसी एक विधा के रचनाकार के रूप में सीमित नहीं किया जा सकता। वे अपने रेखाचित्रों, निबंधों और नाटकों के लिए विशेष प्रसिद्‌ध हैं। उनका साहित्य पाठकों का ज्ञानवर्धन करता है और उन्हें आनंद भी देता है। बेनीपुरी ने भारत के इतिहास, वर्तमान और भविष्य को अपने नाटकों का विषय बनाया

है और उनकी नई व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय-चेतना, मानव-प्रेम और जनजीवन के उत्थान की कामना है। उनकी भाषा शैली में चित्रात्मकता, सहजता और प्रवाहमयता मिलती है। वे हिंदी गद्य के विशिष्ट शैलीकार हैं, इसलिए उन्हें कलम का जादूगर भी कहा जाता है।

उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं – **माटी की मूरतें, गेहूँ और गुलाब** (शब्दचित्र), **चिता के फूल** (कहानी संग्रह), **पतितों के देश में** (उपन्यास); **हवा पर, नई नारी, सतरंगा इंद्रधनुष** (निबंध), **अंबपाली, विजेता, तथागत, नेत्रदान, संघमित्रा** (नाटक) आदि। बेनीपुरी ने प्रचुर मात्रा में बाल साहित्य की रचना भी की है। उनकी सभी रचनाएँ **बेनीपुरी रचनावली** के नाम से आठ खंडों में प्रकाशित हैं।

अंबपाली नाटक, नाटककार बेनीपुरी का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। हिंदी नाटक साहित्य में जयशंकर प्रसाद के बाद बेनीपुरी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक हिंदी नाटक की जो यथार्थवादी परंपरा भारतेंदु से प्रारंभ हुई, रामवृक्ष बेनीपुरी ने उसे आगे बढ़ाया। **अंबपाली** उनका पहला नाटक है, जिसकी रचना उन्होंने हज़ारीबाग सेंट्रल जेल में सन 1940-45 के बीच की। वैशाली गणतंत्र की स्मृति और इस गणतंत्र की राजनर्तकी आम्रपाली जिसे लेखक ने अंबपाली कहा है, के व्यक्तित्व के आकर्षण ने लेखक को **अंबपाली** की रचना के लिए प्रेरित किया। बेनीपुरी ने जितने ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं उनमें से अधिकांश नाटकों का संबंध बौद्ध काल से है। विश्व इतिहास के प्राचीनतम गणराज्य वैशाली के आधार पर इस नाटक की कथावस्तु तैयार की गई है। आम्रपाली वैशाली गणराज्य की एक अतिप्रसिद्ध नारी रही है। उसके चरित्र को आधार बनाकर हिंदी में अनेक कृतियों की रचना हुई है। जयशंकर प्रसाद का **अजातशत्रु** नाटक और आचार्य चतुरसेन शास्त्री का **वैशाली की नगरवधू** उपन्यास आम्रपाली के चरित्र पर आधारित महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

प्रस्तुत नाटक **अंबपाली** की रचना स्वतंत्रता से पूर्व ही स्वतंत्र देश के ज़िम्मेदार नागरिक तैयार करने की कोशिश के रूप में हुई है। ऐतिहासिक चरित्रों को अपने अनुकूल बनाकर नाटककार बेनीपुरी अपने समय की विसंगतियों से मुठभेड़ करते हैं। **अंबपाली** उसका एक

प्रत्यक्ष उदाहरण है। उनकी **अंबपाली** बौद्ध युग की आम्रपाली के आधार पर खड़ी एक कलाकार की स्वतंत्र अंबपाली है।

स्वाधीनता आंदोलन के काल में ऐतिहासिक नाटकों के लेखन का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य भारतीय इतिहास के प्रेरक चरित्रों और प्रसंगों द्वारा भारतीयों के विस्मृत आत्मगौरव से उनका परिचय कराना और आत्महीनता से मुक्त करना था। रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में यह ध्यान रखा है कि इतिहास के ऐसे ही प्रसंगों और चरित्रों पर नाटक लिखे जाएँ जो वर्तमान काल की स्थितियों और समस्याओं से जुड़ते हों तथा शिक्षाप्रद हों। बौद्धकालीन आम्रपाली को नाटककार बेनीपुरी ने आधुनिक भारत की स्वाधीनता की चेतना के मूर्त रूप में प्रतिष्ठित किया है, जिसमें सौंदर्य और शौर्य का, प्रवृत्ति और निवृत्ति का, संघर्ष और समर्पण का, राष्ट्रनिष्ठा और आत्मदान का अद्भुत संयोग है। यह चरित्र आज भी अत्यंत प्रासंगिक है। इस नाटक में ऐतिहासिक तथ्यों से अधिक महत्त्वपूर्ण है ऐतिहासिक कल्पना की सृजनशीलता जो अतीत को वर्तमान से जोड़ती है और भविष्य की ओर सार्थक संकेत करती है। नाटककार ने इस नाटक की कथावस्तु में स्वतंत्रता को स्थायित्व प्रदान करनेवाले तत्त्वों के साथ-साथ पराधीनता की परिस्थितियों को पैदा करनेवाले तत्त्वों की भी प्रसंगानुसार चर्चा की है। संगठन, एकता, अनुशासन, सुव्यवस्था, सत्यनिष्ठ श्रेष्ठजनों और स्त्रियों का सम्मान आदि तत्त्व जहाँ राष्ट्र को सबल बनाते हैं वहीं विद्वेष, संशय, विभेद, कर्त्तव्यहीनता, भ्रष्टआचरण आदि तत्त्व राष्ट्र को विघटित और पराधीन बनाते हैं। इतना ही नहीं बेनीपुरी ने इस नाटक में लोकतांत्रिक चेतना के विकास और लोकतंत्र के सामने आने वाले खतरों की ओर सार्थक संकेत भी किया है। वैशाली गणतंत्र के विघटन और उसके नष्ट होने के कारणों द्वारा उन्होंने भारत को मिलने वाली स्वतंत्रता और भविष्य में उस स्वतंत्रता की रक्षा के दायित्व के लिए भी भारतवासियों को सावधान किया है। नाटककार का मानना है कि लोकतंत्र की रक्षा के लिए साधारण नागरिकों में व्यापक सामाजिक सजगता और राजनीतिक जागृति ज़रूरी है। साथ ही इसके लिए स्त्री-शक्ति की विशेषताओं की पहचान और उसका विकास भी आवश्यक है।

भारतीय स्त्री की स्थिति और उसकी स्वाधीनता की चिंता बेनीपुरी के विचार और लेखन की महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है। **नई नारी** नामक पुस्तक और उनके अन्य निबंधों में भी यह चिंता व्यक्त हुई है। **अंबपाली** की रचना के पीछे यह भी एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। **अंबपाली** एक नायिका प्रधान नाटक है, जिसमें दबी-कुचली भारतीय नारी को भव्य और विराट व्यक्तित्व प्रदान किया गया है। नाटककार बेनीपुरी ने **अंबपाली** के व्यक्तित्व के द्वारा स्त्री-शक्ति का एक ऐसा रूप सामने रखा है जो समाज, संस्कृति और धर्म की संकीर्णताओं और रूढ़ियों को तोड़ने में सक्षम है। अंबपाली किसी से भी अभिभूत नहीं होती। वह कर्त्तव्य पूरा करने के लिए निजी इच्छाओं का परित्याग करती है। इतना ही नही, वह राष्ट्रीय संकट के समय योद्धा-वेश भी धारण करती है। वास्तव में **अंबपाली** पूर्ण स्वतंत्रता का प्रतिनिधि चरित्र है। उसके व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि विजयी अजातशत्रु को भी उसके सामने पराजित होना पड़ा और भगवान बुद्ध को भी बौद्ध संघ की चली आ रही व्यवस्था में स्त्रियों को स्थान देने के लिए परिवर्तन करना पड़ा। आज नारी सशक्तीकरण, नारी जागरण, नारी स्वतंत्रता आदि की बातें हो रही हैं। इस दृष्टि से बेनीपुरी की **अंबपाली** के चरित्र को देखें तो केवल इस नाट्यकृति की प्रासंगिता ही सिद्ध नहीं होती है अपितु इससे आज विकृत उपभोक्तावाद को बढ़ावा देने के लिए विज्ञापनों और सौंदर्य प्रतियोगिताओं के द्वारा नारी शरीर के उपयोग के प्रयासों के प्रति भी सावधान रहने के संकेत मिलते हैं।

नाट्य शिल्प की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि लगभग 55 वर्ष पूर्व जब **अंबपाली** नाटक की रचना पूरी हुई थी तब नाटक की तकनीक का पर्याप्त विकास नहीं हुआ था। इस बात को स्वयं लेखक ने भी स्वीकार किया है। शिल्प और भाषा के स्तर पर इस नाटक में कोई जटिलता नहीं है। लेखक ने नाटक और दर्शकों/पाठकों के बीच सहज संबंध स्थापित करने के लिए अपने समय की बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। नाटक के संवादों में नाटककार की अद्भुत क्षमता प्रकट हुई है। एक-एक संवाद दर्शक और पाठक के मन को गहराई तक प्रभावित करता है। मंचन की दृष्टि से भी यह एक सफल नाटक सिद्ध हुआ है। रचना काल से लेकर अब तक इस नाटक के अनेक सफल मंचन हो चुके हैं।

रामवृक्ष बेनीपुरी का यह नाटक ग्यारहवीं कक्षा के ऐच्छिक हिंदी के पाठ्यक्रम में प्रस्तावित किया गया है, ताकि विद्यार्थी नाटक जैसी लोकप्रिय साहित्यिक विधा से भली-भाँति परिचित हो सकें। साथ ही इतिहास के प्रेरणादायी चरित्र अंबपाली को समझ सकें और उसकी विगत अर्थवत्ता और समकालीन प्रासंगिकता को जान सकें। विद्यार्थियों की वय, रुचि और योग्यता को ध्यान में रखकर इस नाटक को उपयोगी बनाने हेतु लेखक की मूल संवेदना की रक्षा करते हुए नाटक को आवश्यकतानुसार संक्षिप्त और संपादित किया गया है। इस नाटक की भाषा पर प्रादेशिकता का प्रभाव है और वाक्य-संरचना भी आज की वाक्य-संरचना से थोड़ी भिन्न है और कहीं-कहीं सहायक क्रिया का प्रयोग नहीं है। परंतु इसे संपादित करते हुए लेखक की मूलकृति की भाषा के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की गई है। कुल मिलाकर **अंबपाली** नाटक अपने उद्देश्य और साहित्यिक स्वरूप की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रेरणादायी कृति है।

पांडुलिपि समीक्षा-संशोधन कार्यगोष्ठी के सदस्य

1. श्री निरंजन कुमार सिंह
   अवकाश प्राप्त रीडर
   सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग
   एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
2. डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी
   प्रोफेसर, केंद्रीय हिंदी संस्थान
   नई दिल्ली
3. डॉ. विजयबहादुर सिंह
   अध्यक्ष, हिंदी विभाग
   उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल
4. डॉ. सुरेश शर्मा
   सहायक संपादक
   नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली
5. डॉ. सत्यकाम
   रीडर, हिंदी विभाग
   इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
   नई दिल्ली
6. डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता
   रीडर, हिंदी विभाग
   पत्राचार पाठ्यक्रम संस्थान
   दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
7. डॉ. रामकरण डबास
   वरिष्ठ हिंदी प्राध्यापक
   राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
   नई दिल्ली
8. डॉ. कमल सत्यार्थी
   अवकाश प्राप्त वरिष्ठ हिंदी अध्यापक
   सरदार पटेल विद्यालय, नई दिल्ली
9. श्रीमती मंजुरानी सिंह
   वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका, केंद्रीय विद्यालय
   जे.एन.यू.,नई दिल्ली
10. डॉ.राधिका शर्मा
    वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका
    केंद्रीय विद्यालय न. 1, दिल्ली कैंट
11. श्रीमती हरजीत कौर गिल
    वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका, सर्वोदय कन्या विद्यालय
    मालवीय नगर, नई दिल्ली
12. डॉ. अनिरुद्ध राय
    प्रोफेसर, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा
    विभाग,एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
13. श्री लालचंद राम
    प्राध्यापक, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा
    विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
14. डॉ. प्रमोद दुबे
    प्राध्यापक, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा
    विभाग, एन.सी.ई.आर.टी.
    नई दिल्ली
15. डॉ. चन्द्रा सदायत **(संयोजक)**
    रीडर, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा
    विभाग,एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

मेरी अंबपाली

अपनी यह पहली नाट्यकृति हिंदी-पाठकों के निकट रखते हुए मुझे संकोच नहीं हो रहा है क्योंकि पुस्तकाकार प्रकाशन के पूर्व ही इसे इतनी प्रशंसा और प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी है कि स्वयं आश्चर्यचकित हूँ।

अंबपाली बौद्धयुग की एक अतिप्रसिद्ध नारी है। उसको लेकर भारतीय भाषाओं में कितनी ही रचनाएँ हुई हैं – काव्य, कहानी, नाटक, उपन्यास के रूप में। किंतु मैंने इस रचना द्वारा अपना नाम सात सवारों में लिखाने की कोशिश नहीं की है। क्योंकि, यह मेरी आदत में शामिल नहीं है। अपने पैरों का वजन और वकत मुझे मालूम है, लेकिन, किसी के पदचिह्न मात्र पर चलना मैं कलाकार की मौत मानता हूँ।

बचपन में ही मेरा झुकाव नाटक-रचना की ओर हुआ था। हाई स्कूल के चौथे या तीसरे वर्ग में ही मैंने एक नाटक लिखा था, लँगोटिया यारों को सुनाया था, उन्हें पसंद आया, उसके खेलने का आयोजन भी हुआ और एक मारवाड़ी दोस्त ने उसे छपवाने के लिए चार रुपये चंदा भी उगाहा था।

लेकिन, बाद में मैं कवि बन गया, तब लेखक हुआ, फिर पत्रकार बनकर रह गया। किंतु हज़ारीबाग सेंट्रल जेल के निश्चिंत एकांत में जब एक दिन बादल घिर आए कि अचानक मेरा नाटककार जग उठा!

और, अपने लिए पात्र के रूप में अंबपाली का चुनाव भी मेरे लिए स्वाभाविक ही था। जहाँ अंबपाली का जन्म हुआ था, उसी भूमि ने मुझे भी उत्पन्न किया है और एक पुरातत्वज्ञ ने तो यहाँ तक कह डाला है कि वृज्जियों के आठ कुलों में शायद मेरा वंश है, जिनकी संघशक्ति ने वैशाली को महानता और अमरता प्रदान की थी।

किंतु, क्या मेरी यह अंबपाली पच्चीस सौ साल पहले रची गई विधाता की अंबपाली का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने का दावा कर सकती है?

विधाता की किसी कृति को जब कलाकार अपनी कलाकृति के लिए चुनता है, तब उसके कलात्मक रूप देने की प्रक्रिया में एक अजीब बात हो जाती है। विधाता की कृति धीरे-धीरे विलीन होने लगती है और समाप्त करते-न-करते कलाकार आश्चर्य से देखता है, एक दूसरी ही नवीन आकृति उसके सामने आ खड़ी है!

और, यह कौन कहे कि सुंदर कृति किसकी – विधाता की या कलाकार की? वह, जो पचास या सौ साल जीकर धूल में मिल गई, विधाता की वह शकुंतला अच्छी या दो हज़ार साल के बाद भी जो जीवित है, कालिदास की वह शकुंतला अच्छी!

पुरातत्वज्ञ मेरी इस अंबपाली को इतिहास के पन्नों में अंकित अंबपाली से मिलाएँ, घटनाओं के तारतम्य में कुछ त्रुटियाँ पाएँ और मुझे गालियाँ भी दे लें, किंतु मैं कहूँ, मुझे तो मेरी अंबपाली ही सच्ची अंबपाली प्रतीत हुई है। सच्ची और अच्छी भी – क्योंकि सत्य ही सुंदर और सुंदर ही सत्य है न!

अब भी वे दिन भूले नहीं हैं, जब हज़ारीबाग सेंट्रल जेल के वार्ड नं. 1 के सामने सघन पत्तियोंवाली एक आम्र-विटपी के तने से उठँगकर मैं अपनी अंबपाली की रचना किया करता था – सामने फूलों से लदे मोतिए और गुलाब के झाड़ थे, ऊपर आसमान पर बादलों की घुड़दौड़ होती थी और इधर मेरी लेखनी कागज़ पर घुड़दौड़ करती थी। दिन भर मैं जो कुछ रचता, शाम को मित्रों को सोल्लास सुनाता। उस पाषाणपुरी में मेरी इस कुसुम तनया की अलौकिक चरितावली उनके शुष्क हृदयों को हरा-भरा और रंगीन बना देती और वे मुझ पर और मेरी इस कृति पर प्रशंसा की पुष्प-वृष्टि करने लगते! बेचारे विधाता को ऐतिहासिक अंबपाली की सृष्टि करने में ऐसा सुंदर वातावरण और ऐसा निराला प्रोत्साहन कहाँ प्राप्त हुआ होगा!

अपनी अंबपाली की सुंदरता और पूर्णता पर मुझे पूर्णतः संतोष है, अंबपाली और वैशाली की आत्मा के चित्रण में – अपने जानते, मैंने कोई त्रुटि नहीं आने दी है। हाँ, प्रथम नाट्य-रचना होने के

कारण इसमें टेकनीक की त्रुटियाँ हो सकती हैं – जिनके लिए क्षमा माँगने की ज़रूरत भी मैं महसूस नहीं करता, क्योंकि मेरे सहकर्मियों ने क्षमाप्रार्थना को भी एक बाज़ारू माल बना रखा है।

आशीर्वाद दीजिए, कुछ ऐसी ही नाट्य-कृतियाँ मैं आपके सामने उपस्थित करने में समर्थ हो सकूँ।

रामवृक्ष बेनीपुरी

बेनीपुर

उमड़ते सावन की एक बरसती अधरतिया

सन 1947

पुनश्च – मेरी यह **अंबपाली** कितनी सौभाग्यशालिनी निकली! सात वर्षों में इसके कई संस्करण निकल चुके। इस नए संस्करण में एक छोटा-सा परिवर्धन – कुल पाँच पंक्तियों का – किया गया है। इसकी आवश्यकता थी। अजातशत्रु से मिलने पर, जब बात बहुत बढ़ रही थी, अंबपाली ने उसे एक छोटी-सी तसवीर दिखाई। वह तसवीर किसकी थी? उस समय का साहित्य कहता है, अंबपाली के रूप-सौंदर्य पर मुग्ध होकर अजातशत्रु का पिता बिंबसार भी उसकी रंगशाला में चुपचोरी प्रणय की भीख लेने गया था । पिता की इस तसवीर को देखकर भी क्या अजातशत्रु वहाँ टिक सकता था?

रामवृक्ष बेनीपुरी

सन 1954

भारत का संविधान

भाग 4अ

नागरिकों के मूल कर्त्तव्य

अनुच्छेद 51अ

मूल कर्त्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्रणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।



अंबपाली

पात्र-परिचय

स्त्री पात्र

अंबपाली	वैशाली की राजनर्तकी
मधूलिका	अंबपाली की सहेली
सुमना	अंबपाली की मौसी
पुष्पगंधा	वैशाली की भूतपूर्व राजनर्तकी
चयनिका	अंबपाली की परिचारिका



पुरुष पात्र

अरुणध्वज	अंबपाली का ग्रामीण प्रेमी
भगवान बुद्ध	संसार के प्रसिद्ध धर्म प्रवर्तक
आनंद	बुद्ध के प्रधान शिष्य
चेतक	वैशाली के महामात्य
अजातशत्रु	मगध के सम्राट
सुनीध	मगध-सम्राट का सखा-मंत्री
वस्सकार	मगध का प्रधानमंत्री
अश्वसेन	वैशाली का नागरिक
वसुबंधु	वैशाली का नागरिक

पहला अंक

1

[एक विस्तृत सघन अमराई — आम की डाल-डाल मंजरियों से लदी, झुकी; भौंरे जिन पर गुंजार कर रहे, वसंती हवा जिनसे खेलवाड़ कर रही है।

अमराई का मध्य — एक फैला हुआ आम का वृक्ष — उसकी एक मोटी डाल से एक झूला लटक रहा —

एक किशोरी झूलेवाले वृक्ष की ओर आती दिखाई पड़ती है, झुकी डाली की मंजरियों को चूमती है — उसे देखते ही पिंजड़ों से पंछी चहचहा उठते हैं — उन पिंजरबद्ध पंछियों के निकट जाकर उन्हें दुलराती है — मुँह से सीटी देती हुई एक श्यामा के पिंजड़े को लेती झूले के नज़दीक आती है — धीरे-धीरे झूलती हुई, श्यामा की ओर देखती, वह गाती है—]

मेरी श्यामा ने वंशी फूँकी,
कोइलिया क्यों कूकी?
कोइलिया कूकी,
मेरी श्यामा ने वंशी फूँकी।

[जब किशोरी गा रही, उसी रंगरूप वेशभूषा की दूसरी किशोरी बगल से आती है — पहली किशोरी गाने की तन्मयता में उसे नहीं देखती — वह धीरे-धीरे, दबे पाँव आम के पेड़ के नज़दीक आती और उसकी डाल पर चढ़ जाती है — ज्योंही गाना खत्म होता है, वह कोयल की बोली का अनुकरण कर कुहू-कुहू बोल उठती है — संगीतमग्ना किशोरी

चकित होकर पेड़ की ओर देखती है – फिर झूले से उठकर आगे बढ़ती है – सहसा डाल की ओर देखकर हँस पड़ती है।]

पहली किशोरी : ओहो, मधु! उतर पगली! वही मैं कह रही थी, यह कोयल तो हो नही सकती। उतर, उतरती है या...

दूसरी किशोरी : या! क्या? गा, गा – 'मेरी श्यामा ने वंशी'...वाह री तेरी श्यामा!

पहली किशोरी : क्यों री, तू मुझे चिढ़ाती क्यों है?

दूसरी किशोरी : *(बिना जवाब दिए वह गाती जाती है)* 'कोइलिया क्यों कूकी, मेरी श्यामा ने वंशी फूँकी....'

पहली किशोरी : तू नहीं चुप होती!

दूसरी किशोरी : *(गाती जाती है)* 'क्यों कूकी, मेरी श्यामा ने...'

[दोनों, एक-दूसरी को, आँखें गड़ा-गड़ाकर देखती हैं – देखते-ही-देखते दोनों ठठाकर हँस पड़तीं और एक-दूसरी से लिपट जाती हैं। इनमें पहली किशारी है अंबपाली – दूसरी उसकी सखी मधूलिका और यह है आज से लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले की बात – आज जहाँ मुज़फ़्फ़रपुर का ज़िला है, वहाँ, उत्तर-बिहार में तब वृज्जियों का प्रजातंत्र था, जो संघराज्य कहलाता था – ये दोनों वृज्जि-कुमारियाँ हैं –]

मधूलिका : अंबे, आज भोर-भोर तूने कुछ देखा है क्या या रात में कोई सपना देखा था?

अंबपाली : तेरा मतलब?

मधूलिका : मतलब है, तेरे इस गाने से।

अंबपाली : क्या बिना सपने देखे आदमी कुछ गा नहीं सकता? और, सच पूछ, तो ऐसी कोई भी रात होती है जिसमें आदमी सपने न देखे या ऐसी कोई भोर आती है जिसमें आदमी कोई रूप न देख पाए?

मधूलिका : लेकिन सपने-सपने में फ़र्क होता है और फ़र्क होता है रूप-रूप में, अंबे! एक सपना होता है जिसमें आदमी डरकर आँखें खोल देता है और एक सपना ऐसा होता है, जिसमें जग जाने के बाद भी आदमी आँखें मूँद लेता है कि एक बार फिर उसकी कड़ियाँ जोड़ सके! समझी?

अंबपाली : हूँ।

मधूलिका : यों ही एक रूप होता है जिसको देखकर आँखें मुड़ जातीं या मुँद जाती हैं और दूसरा रूप होता है, जिस पर नज़र पड़ते ही पलकें और बरौनियाँ काम करना छोड़ देती हैं, नज़रों में टकटकी बँध जाती है।

अंबपाली : हूँ।

मधूलिका : हूँ। हूँ क्या?

अंबपाली : यही कि रूप-रूप में फ़र्क होता है और फ़र्क होता है सपने-सपने में। यही न? लेकिन, एक बात कहूँ मधु, मुझे याद नहीं कि कभी बुरे सपने भी देखे होऊँ, और मेरी आँखों ने जिसे देखा, सुंदर ही पाया!

मधूलिका : *(आश्चर्यमयी मुद्रा से)* अच्छा!

अंबपाली : हाँ, हाँ, सच कहती हूँ सखि! न जाने क्या बात है, या तो कुरूप चीज़ें मेरी आँखों के सामने आती ही नहीं या मेरी नज़रें उनका प्रतिबिंब ग्रहण नहीं करतीं....

मधूलिका : *(बात काटकर किंचित मुसकान से)* या तेरी नज़र पड़ते ही कुरूप भी रूपवान हो उठते हैं?

अंबपाली : दिल्लगी की बात नहीं है, मधु! मैंने आज तक दुनिया में सिर्फ़ सौंदर्य-ही-सौंदर्य देखा है – निर्जीव प्रकृति से लेकर प्राणवान प्राणी तक... और, सपने? उनकी बात मत पूछ। मधु, आदमी जागना क्यों चाहता है? सोए रहो, सपने देखते रहो; क्या इससे भी कोई दूसरी अधिक सुंदर चीज़ हो सकती है? जागरण! *(उपेक्षा के शब्दों में)* जागरण आदमी का वरदान है या अभिशाप, रे!

मधूलिका : आज तुझे यह क्या हो गया है! तू किस सपने के लोक में है?

अंबपाली : रात जो देखा, उसकी मत पूछ! उफ़, बिलकुल अद्‌भुत, अपूर्व! उसकी याद से ही शर्म आती है, सखि!

मधूलिका : मेरी कल्पना की रानी! खैर, बता, तूने क्या देखा?

अंबपाली : तेरी ज़िद; अच्छा सुन *(वह चकित नेत्रों से इधर-उधर देखती है कि कोई दूसरा तो नहीं है और फिर धीमे स्वर में कहने लगती है)* रात देखा, कहीं अजीब देश में पहुँच गई हूँ, जहाँ चारों ओर फूल-ही-फूल हैं। जिन्हें हम गूलर-पाकर-पीपल कहते हैं, उनमें भी फूल लगे हैं – चंपा के, गुलाब के, पारिजात के। ज़मीन पर घास-फूस की जगह फूलों की पंखड़ियाँ बिछी हैं और धूल की जगह पीत पराग बिखरा है। हवा में अनहद संगीत, वातावरण में अजीब रंगामेज़ी। सामने एक तालाब देखा, जिसमें कमल के सहस्र-सहस्र फूल खिल रहे – लाल, श्वेत, पीत, नील। और, दर्पणोपम निर्मल नील जल!

मधूलिका : *(विस्मय में)* अजीब सपना!

अंबपाली : उसका अनोखापन तो अब आता है, रे। पानी में धँसकर मैं तैरने लगी और बढ़ी एक नील कमल की ओर। किंतु यह क्या? यह तो कलँगीवाला राजकुमार है और मुझे अपनी ओर आते देख वह मुसकरा रहा है। मैं चकित हुई। दूसरे कमलों की ओर देखा – वैसे ही कलँगीवाले राजकुमार, हज़ार-हज़ार! और, सब-के-सब मेरी ओर देखकर सिर्फ़ मुसकरा नहीं रहे, बल्कि ठठा-ठठाकर हँस रहे। मैं उफ़ क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कैसे बाहर होऊँ? इससे तो डूब मरना अच्छा। एक डुबकी, दूसरी डुबकी, तीसरी डुबकी में मालूम हुआ, साँस घुट रही है। अच्छा हुआ, नींद टूट गई। जगी तो पाया, पसीने-पसीने थी।

मधूलिका : निस्संदेह विचित्र सपना देखा है तूने। लेकिन, समझती है, इसका मानी क्या है?

अंबपाली : क्या समझूँ? एक दिन का सपना हो तो, कुछ समझा जाए। जिसकी ज़िंदगी ही सपने की है, वह किस-किसका मानी लगाए!

मधूलिका : लेकिन इस सपने का तो खास महत्त्व है। वसंत के प्रथम दिन का यह सपना साधारण सपनों में नहीं है।

अंबपाली : तो क्या मानी है इसका?

मधूलिका : वही, जो उस दिन ज्योतिषीजी ने तेरे हाथ की रेखाएँ देखकर कहा था — 'तेरे चरणों पर हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुट लोटेंगे।'

अंबपाली : चुप, चुप! मैं तो उसकी कल्पना से ही सिहर उठती हूँ, मधु! 'हज़ार-हज़ार राजकुमार!' उफ़ वह भी कोई ज़िंदगी होगी। मेरा तो अकेला....

मधूलिका : 'मेरा तो अकेला अरुणध्वज!' क्यों, यही न कहना चाहती थी? *(रहस्यपूर्ण ढंग से मुसकराती है।)*

[एक कुंज की ओर से कुछ शब्द, किसी के आने की पदचाप-सी सुनाई पड़ती है — दोनों सखियाँ चौंककर उस ओर देखती हैं — पाती हैं, एक नौजवान चला आ रहा है — यह अरुणध्वज है — अंग-अंग गठा हुआ, सुपुष्ट, सुविकसित — कटि से घुटने तक का पीन वस्त्र — पीठ पर तूणीर, कंधे से धनुष लटक रहा, हाथ में एक बाण — सिर पर घुँघराले लंबे बाल जिन पर पीले पाटंबर की पट्टी जिससे कुछ फूल कलँगी की तरह झूल रहे — यौवन की साक्षात् प्रतिमा-सा दिखाई पड़ता है —

उसे देखते ही अंबपाली सिटपिट — मधूलिका उछल पड़ती है, जैसे उसे मुँहमाँगा वरदान मिला हो — 'अरुण, खूब आए, भले आए, अच्छे आए'*— कहती दौड़कर आगे बढ़ती है और उसे झूले के नज़दीक ले आती है — अरुण चकित-विस्मित उसका मुँह देखता है—]*

मधूलिका : *(अरुण से)* अच्छा, अब तुम दोनों इस पर बैठो *(झूले की ओर इशारा करती है)* मैं ज़रा झुलाऊँगी। *(अंबपाली से)* वह कौन-सा गाना है, अंबे, हाँ – हाँ *(सुर में)* 'मेरी श्यामा ने वंशी फूँकी। कोइलिया क्यों कूकी!' *(अपने चेहरे की ओर आश्चर्य से घूरते हुए अरुण से)* तुम बैठते क्यों नहीं जी?

अरुणध्वज : यह क्या शरारत सूझी है तुझे, मधु!

मधूलिका : हाँ, मेरी शरारत ही तो! ज़रूर मेरी शरारत है यह! अच्छा महाशयजी, प्रणाम! *(अंबपाली से)* देवीजी,नमस्ते! उभयमूर्ति इस अपराधिनी को क्षमा प्रदान कीजिए, मैं चली!

[बड़ी विनम्रता से दोनों को झुक-झुककर अभिवादन करती मधूलिका चलने का उपक्रम करती है – जब वह दो-तीन कदम आगे बढ़ती है, अंबपाली उसका हाथ पकड़ लेती है –]

अंबपाली : शैतानी मत कर, ठहर!

मधूलिका : पहले शरारत, अब शैतानी! राजा से सात गज़ बढ़कर रानी! *(बड़ी विद्रूपता से उँगली अपने मुँह पर ले जाती है!)*

अरुणध्वज : अच्छा, भाई तुम दोनों आपस में पीछे सुलझा लेना। मैं एक ज़रूरी बात कहने आया हूँ।

मधूलिका : किसी ज़रूरी बात से तो आप आए ही हैं। बिना ज़रूरत के आप यहाँ क्यों आते भला? कहाँ हमारा यह आनंदग्राम, कहाँ आपकी मधुगोष्ठी; बीच में वेगवती की धारा। तो भी आप रोज़-रोज़, बिला नागा, दोनों जून, जो यहाँ पैर थकाते, तकलीफ़ उठाते, पहुँच जाया करते हैं, सो क्या बिना किसी ज़रूरी बात के ही!

अरुणध्वज : अरी, तू दिन-दिन वाचाल होती जाती है! खैर, बोलो, तुम लोग चलती हो या नहीं?

मधूलिका : हाँ, हाँ, बोल अंबे, तू जाती है या नहीं? जा जा! *(अंबे को खोदती है।)*

अंबपाली : मैं पीटूँगी तुझे मधु। *(अरुण से)* चलें... कहाँ?

मधूलिका : *(सुर में)* 'कुंजकुटीरे, यमुनातीरे!' *(अलग हटकर खिलखिला पड़ती है।)*

अरुणध्वज : *(बनावटी गुस्से में)* फिर वही नटखटपन! *(अंबपाली से)* वैशाली चलना है।

अंबपाली : वैशाली? वैशाली में क्या है?

अरुणध्वज : फाल्गुनी उत्सव! हम वृज्जियों का प्यारा राष्ट्रीय त्योहार! किस वृज्जिकिशोरी और वृज्जिकुमार के मानस में इस उत्सव के नाम से ही भावनाएँ तरंग-पर-तरंग नहीं लेने लगतीं! और इस साल तो उसका विशेष महत्त्व है। वैशाली की राजनर्तकी देवी पुष्पगंधा अब अवकाश ग्रहण करने जा रही हैं, उनकी जगह इस साल नई राजनर्तकी का चुनाव....

[मधूलिका चुनाव का नाम सुनते ही इन दोनों के नज़दीक आती और आश्चर्य-भरे स्वर में कहती है —]

मधूलिका : चुनाव! इसी साल!

अरुणध्वज : हाँ, हाँ; इसी साल! देखें, वह कौन-सी सौभाग्यशालिनी वृज्जिकुमारी होती है, जिसके चरणों पर हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुट...

अंबपाली : *(अचानक चिल्ला उठती है)* ऐं! ऐं!

अरुणध्वज : क्यों? यों सहम क्यों उठी?

मधूलिका : मैं कहूँ, क्यों?

अंबपाली : मधु, मधु! *(हाथों से मना करती है।)*

अरुणध्वज : क्या बात है मधु?

मधूलिका : *(विनोद-भाव से अंबपाली को देखती)* क्यों?

अंबपाली : (गुस्सा दिखाती) तू चुप रहती है या...

मधूलिका : या तू पीट देगी, यही न! तो सुनिए, अरुणजी; उस दिन ज्योतिषीजी ने अंबपाली को कहा —

[अंबपाली मधूलिका की ओर लपकती है – अरुणध्वज उसका हाथ पकड़ लेता है – वह थोड़ी देर तक हाथ छुड़ाने की कोशिश करती है – फिर गंभीर होकर मधु से कहती है –]

अंबपाली : अच्छा, बोल, क्या ज्योतिषीजी ने कहा?

मधूलिका : ज्योतिषीजी ने अंबपाली से कहा – 'हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुट तुम्हारे चरणों पर लोटेंगे!' वह डरती है, कहीं वही न राजनर्तकी बना दी जाए!

अंबपाली : *(गुस्से में)* डरती है... डरूँ क्यों... डरे चुगलखोर!

अरुणध्वज : तुम दोनों पगली हो! वहाँ वैशाली की ही इतनी सुंदरियाँ होंगी कि तुम गाँव-गँवइयों को कौन पूछे! चलो, ज़रा देख आया जाए – नृत्य-गीत, खेल-तमाशे। ज़रा जी बहला आएँ!

मधूलिका : ज़रूर जाइए। खेल-तमाशे, नृत्य-गीत! नृत्य-गीत में आप दोनों की जोड़ी भी कैसी अच्छी रहेगी! मुझे काँटों में मत घसीटिए।

अरुणध्वज : फिर वही शरारत! तुझे चलना ही पड़ेगा, मधूलिके!

मधूलिका : अच्छा, शायद राधा की महत्ता के लिए कोई पिछलगी ललिता भी चाहिए ही।

अंबपाली : तू चुप नहीं होती रे!

[अंबपाली एक झटके में अरुणध्वज से हाथ छुड़ाकर मधूलिका को पीटने दौड़ती है – मधूलिका हँसती हुई भागती है – दोनों सखियों की भाग-दौड़ के पीछे-पीछे अरुणध्वज भी कुंज की ओट हो जाता है।]

2

[वेगवती नदी की पतली धारा के किनारे बसा आनंदग्राम – बाँस के बने और फूस के छाए छोटे-छोटे घर – हर घर के आगे बाँस के बनाए चौकोर बाड़े, जहाँ-तहाँ बच्चों के खेल और

कलरव — कुछ युवतियाँ घड़े लिए वेगवती की ओर जातीं — कई जगह बूढ़ियाँ चरखे कातती दिखाई पड़तीं —

आनंदग्राम के ठीक नदी-किनारे, एक घर वैसा ही बना, वैसी ही छाया, वैसे ही बाड़े, वैसे ही तोरण —

इस घर का आँगन — लिपा-पुता, स्वच्छ, निर्मल — आँगन के एक कोने में एक चबूतरा, जिस पर कुछ फूल और तुलसी के पौधे — बीच आँगन में — धूप में बैठी — एक बुढ़िया चरखा कात रही — सामने बरामदे में एक किशोरी फूलों की माला गूँथ रही और गुनगुना रही —

इस किशोरी को पहचाना आपने? यह अंबपाली है — और बुढ़िया उसकी पालिका सुमना — सुमना चरखा कातती-कातती कई बार उसकी ओर नज़र उठाकर देखती है, फिर जैसे चिढ़कर बोल उठती है —]

सुमना : बस फूल, फूल, फूल! दिन फूल, रात फूल, सुबह फूल, शाम फूल!

अंबपाली : *(सिर नीचा किए माला गूँथती-गूँथती)* दिन फूल, रात फूल, सुबह फूल, शाम फूल!

सुमना : उलटे मेरा मुँह चिढ़ाती है, चिढ़ा ले। बस, कुछ दिन और! फिर, जब किसी का घर बसाएगी तो आटे-दाल का भाव मालूम होगा।

अंबपाली : जब किसी का घर बसाएगी, तब आटे-दाल का भाव...*(अचानक सिर ऊँचाकर)* अच्छा, आटे-दाल का आजकल क्या भाव है मौसी?

सुमना : चुप नहीं होती, शोख लड़की! यह जानती तो उसी दिन तेरा गला...*(चरखे से एक हाथ छुड़ा गले पर ले जाती और इस तरह इशारा करती है, मानो गला घोंटना चाहती हो।)*

अंबपाली : किस दिन मौसी?

सुमना : जब तू छोटी बच्ची थी, तेरी माँ मर रही थी और तू कें-कें कर रही थी—कें-कें-कें!

अंबपाली : तो क्यों नहीं गला घोंट दिया? तुम घोंट ही नहीं सकतीं, मेरी अच्छी मौसी!

सुमना : तब न घोंटा, अब बिना घोंटे न छोड़ूँगी। जब देखती हूँ, गुनगुना रही है, थिरक रही है या फूल गूँथ रही है! तू घर-गिरस्ती की कोई बात तो सीखती ही नहीं। जहाँ जाएगी, आप जलेगी, मुझे गालियाँ सुनवाएगी।

अंबपाली : मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाती, मौसी! और किसकी मजाल जो तुम्हें गालियाँ दे? *(चेहरे पर अभिमान का स्पष्ट आभास)*

सुमना : *(तमककर)* हट, सब लड़कियाँ ऐसा ही कहती हैं (मुँह बनाकर) 'मैं तुम्हें – छोड़कर – कहीं – नहीं जाती!' लेकिन जब नए घर में जाती हैं, फिर...

[इसी समय सजी-धजी मधूलिका लपकती हुई पहुँचती है और सुमना की बात बीच ही में काटती हुई बोलती है –]

मधूलिका : नहीं, नहीं मौसी! अंबा सब लड़कियों जैसी नहीं है। यह किस के घर जाएगी? ऊहूँ! इसके चरणों पर तो हज़ार-हज़ार राजकुमार अपने मुकुट चढ़ाएँगे – हाँ!

सुमना : हाँ – हाँ, एक उम्र में सब लड़कियाँ राजकुमारों का ही सपना देखती हैं – हज़ार-हज़ार राजकुमार! लाख-लाख देवकुमार! लेकिन, जब एक दिन हाड़-मांस का एक साधारण मानव-पुतला हौले हाथ पकड़ता और अपनी गिरस्ती की चक्की में गाढ़े जोतता है तो उनके सारे सपने हवा हो जाते हैं।

अंबपाली : मैं नहीं जुतूँगी, नहीं जुतूँगी, नहीं जुतूँगी।

सुमना : यह भी कह, मैं ज़िंदगी-भर गाऊँगी, नाचूँगी, माला गूँथूँगी। कह ले, कह ले; जितने दिन कह ले। कह ले, मुझे जला ले। बस, एक वसंत और आने की देर है।

मधूलिका : लेकिन मौसी! क्या इस उम्र में आप ये सब नहीं करती थीं?

सुमना : करती थी क्यों नहीं रे! *(शांत होती)* मैं नाचने, गाने या फूल गूँथने से थोड़े मना करती हूँ। लेकिन, तुम लोगों को कुछ और भी तो सीखना चाहिए न।

जिस घर में जाओ, बोझ हो के नहीं जाओ। नारी जीवन की सार्थकता सिर्फ़ नाचने, गाने या फूल चुनने में नहीं है बल्कि अर्द्धांगिनी बनने में है।

[उधर बाहर घर्र-घर्र और टप-टप की आवाज़ होती – और तुरंत ही अरुणध्वज आँगन में हँसता हुआ घुसता है – सुमना को अभिवादन कर वह दोनों सखियों की ओर मुखातिब होकर कहता है –]

अरुणध्वज : वाह! तुम लोग अभी तैयार नहीं हुई?

सुमना : क्या है? कहाँ के लिए, अरुण?

मधूलिका : मौसी, उस दिन कहा था न तुम्हें, हम वैशाली जाना चाहते हैं। आज ही जाना है। *(अंबपाली से)* क्या तूने मौसी से नहीं कहा था अंबे?

सुमना : ओहो, तभी आज भोर से ही मालाएँ गूँथी जा रही हैं। *(अंबपाली की ठुड्डी पकड़ती हुई)* मेरी पगली, तूने मुझसे कहा क्यों नहीं?

अंबपाली : मैं नहीं जाती!

सुमना : नहीं जाती? क्यों नहीं जाएगी रे! जा – जा, ज़रा जी बहला आ । तेरी उम्र की थी, हम भी जाया करती थीं। फाल्गुनी उत्सव? यह तो हम वृज्जियों का महामेला है। जा, परिधान बदल ले, प्रसाधन कर ले। *(अरुण से)* और अरुण, देखना, मेरी अंबा बिलकुल बालिका है। ज़रा होशियारी से मेले में रखना!

अंबपाली : *(अनखाकर)* मेरी तबीयत अच्छी नहीं; मैं नहीं जाऊँगी।

सुमना : बस, फिर ज़िद। देखता है न तू अरुण, कैसी तुनकमिज़ाज... *(मधूलिका से)* मधु, क्या देखती है, जा, जल्द इसका परिधान ठीक कर दे। ओहो! *(मधूलिका को सिर से पैर तक निहारती हुई)* मैंने ध्यान ही नहीं दिया था, तू इसी से सज-सजाकर आई है।

[मधूलिका अंबपाली को घसीटकर घर में ले जाती है – अरुणध्वज सुमना के नज़दीक बैठ जाता है – सुमना फिर चरखा कातती हुई उससे बातें करती है –]

सुमना : तू कितने साल का हुआ रे, अरुण!

अरुणध्वज : माँ कहती थी, इक्कीसवाँ जा रहा है।

सुमना : मेरी अंबा का भी यह सोलहवाँ है।

अरुणध्वज : *(बड़ी सादगी से)* कवियों ने इसे ही न षोडशी कहा है, मौसी!

सुमना : हाँ – हाँ, यही षोडशी! – जब जवानी बचपन की खिड़की से बाहर की दुनिया को झाँकती है। अजीब उम्र है यह, अरुण! – जब संसार की सब चीज़ें चंचल, नृत्यशील, रंगीन और संगीतमय दिखाई पड़ती हैं। जब लड़कियाँ समझ नहीं पातीं वे क्या हैं! प्रदर्शन जब उनका एकमात्र मनोरथ होता है और प्रसाधन एकमात्र व्यवसाय।

अरुणध्वज : लेकिन अंबा को तो तुम्हीं ने अभी-अभी प्रसाधन के लिए प्रेरित किया है।

सुमना : किया है, क्यों? समझे? नारी अपने को नर से हीन अनुभव करती है। इस हीनता को छिपाने के लिए ही वह प्रसाधन की ओर प्रवृत्त होती है। हम नारियों की साज-सिंगार की प्रवृत्ति हमारी हीनता की सूचक है, अरुण! यह हीनता तब दूर होती है, जब नारी में मातृत्व आता है – वह बिलकुल बदल जाती है, महामहिमान्वित हो जाती है। मातृत्व नारीत्व का चरम उत्कर्ष है। *(कहते-कहते उसका चेहरा रक्ताभ हो उठता है, उसकी आँखें मुँदने-सी लगती हैं, थोड़ी देर के भावावेश के बाद –)* अच्छा, तेरी माँ अब कैसी है, अरुण!

अरुणध्वज : अच्छी ही हैं; हाँ, जब-तब तबीयत कुछ सुस्त हो जाया करती है।

सुमना : तो तू वधू क्यों नहीं लाता? बेचारी की सेवा वह करती। अब तो तू सयाना हुआ रे!

अरुणध्वज : वधू क्या यों ही मारी-मारी फिरती है मौसी?

सुमना : अरे, इसी फाल्गुनी उत्सव में देखना। कितने जोड़े लगते हैं वहाँ! मेरी लगन भी वहीं लगी थी। हाँ, हाँ, तू अब ब्याह कर ले। एक-दो साल में तो अंबा के लिए भी वर चाहिए ही।

[प्रसाधन-शृंगार से सज्जित अंबपाली को लिए-दिए मधूलिका आँगन में आती है – उसका रूप देखकर अरुण की टकटकी बँध जाती है – सुमना उसे देखते ही खिल पड़ती है; बोलती है –]

सुमना : अरुण बेटा, मेरी अंबा जैसी सुंदरी समूचे वृज्जिसंघ में नहीं मिल सकती! तू वैशाली के इस फाल्गुनी उत्सव में देख लेना।

मधूलिका : *(धीरे से)* तब तो यह ज़रूर ही राजनर्तकी चुनी जाएगी।

सुमना : यह तू क्या बोली, मधु!

अंबपाली : *(जो मधूलिका की बात सुन चुकी है, खीझ में)* मैं वैशाली नहीं जाती।

मधूलिका : वाह, नहीं जाती! चलना ही पड़ेगा, हाँ –

[मधूलिका अंबपाली की बाँह पकड़कर उसे घसीटती, घर के बाहर, तोरण के पास ले आती है – पीछे-पीछे सुमना और अरुण हैं – तोरण के सामने अरुण का रथ खड़ा है – वह आगे बढ़कर घोड़े की रास सँभालता है – अंबपाली को आगे ठेलकर मधूलिका भी रथ पर जा चढ़ती है – अरुण भी रथ पर आ रहता है – तीनों सुमना को अभिवादन करते हैं –]

सुमना : देखना, अरुण! मेरी अंबा भोली है; कहीं भीड़ में खो न जाए। *(घोड़े सर्राटे से आगे बढ़ते हैं – सुमना टकटकी लगाए रथ को देखती रहती है – उसके मुँह से निकल पड़ता है –)* भोली बच्ची!

3

[आदिकवि वाल्मीकि द्वारा प्रशंसित, अपनी विशालता और भव्यता से स्वर्ग की गरिमा को भी पराजित करने वाली विशाला वैशाली नगरी – उसमें वृज्जियों का वह भव्य दिव्य 'संघागार' जिसमें उनके संघ के 7,707 राजा एकत्र होकर समय-समय पर परामर्श और निर्णय करते–

संघागार के विशाल प्रासाद के ऊपर के तोरण पर एक विशाल सिंह की मूर्ति जो एक पैर उठाए, मानो झपट्टा मारना चाह रही – उसके दोनों ओर दो गज-मूर्तियाँ जिनकी सूँड़ उठकर ठीक सिंह-मूर्ति के ऊपर, आपस में जा मिलती हैं – सूँड़ के इस मिलने की जगह से एक लंबा स्तंभ जिस पर वृज्जियों की राष्ट्रीय पताका लहरा रही –

लाल रंग की वह पताका जिस पर उजली सिंह-मूर्ति अंकित –

संघागार पर पंक्ति से, तोरण से चार एक तरफ़, चार दूसरी तरफ़, कुल आठ गुंबद– इन गुंबदों के रंग क्रमशः नील, पीत, हरित, मंजिष्ठ, लोहित, श्वेत, अवदात और व्यायुत, जो वृज्जियों के आठ कुलों के सूचक हैं –

संघागार के नौबतखाने से तरह-तरह के बाजे बजकर दिग्दिगंत को मुखरित कर रहे हैं–

और, संघागार के सामने के विस्तृत मैदान में, पहले जहाँ वैशाली का बाज़ार लगा करता, आज फाल्गुनी उत्सव की तैयारियाँ है –

वृत्ताकार बनी है यह उत्सव-भूमि – वृत्त के बीच में ऊँची रंगभूमि है, जहाँ युवक-युवतियों के नृत्य-गान हो रहे – रंगभूमि को केंद्र मानकर समूचा वृत्त आठ भागों में विभक्त किया गया है – जहाँ की दुकानें, परिधान, रथ आदि उपर्युक्त आठ रंगों के ही –

फूलों और सोमरस की दुकानों पर सबसे अधिक भीड़ –

प्रसाधन-शृंगार से आभूषित युवक-युवतियों का अनुपम जमघट –

रंगभूमि से नृत्य-संगीत की धारा प्रवाहित हो आठों भागों को जैसे डुबो देना चाहती हो– सबके पैरों में नृत्य की गति, सबके स्वर में संगीत के सुर – एक मोहक-मादक उत्तेज से वायुमंडल व्याप्त –

अंबपाली : मैं अब नहीं देखना चाहती।

अरुणध्वज : क्यों?

अंबपाली : ये लोग अच्छे नहीं दिखाई देते। सब यों घूरते हैं, जैसे आँखों से निगल जाएँगे।

मधूलिका : *(चौंकती-सी)* आँखों से निगल जाएँगे?

अंबपाली : हाँ, हाँ, आँखों से निगल जाएँगे! मैं तो इन्हें देखते ही काँप उठती हूँ, मधु! ये आँखें हैं या... *(अरुण से)* नहीं-नहीं, अरुण, चलो। मैं बाज़ आई इस देखने से।

मधूलिका : *(व्यंग्य से)* या दिखाने से! मेरी रानी, अभी तू देखने-दिखाने से यों काँपती है और जब हज़ार-हज़ार राजकुमार...

अंबपाली : फिर वही शैतानी? *(भौंहें चढ़ाकर अरुण से)* अरुण, चलते हो? चलो।

अरुणध्वज : चलूँ? कहाँ? संसार में कोई ऐसी जगह बता दे, जहाँ आँखें न हों।

अंबपाली : लेकिन आँख-आँख में फ़र्क है।

मधूलिका : और, मैंने उस दिन कहा था, सपने-सपने में फ़र्क है और फ़र्क है रूप-रूप में, तब तू नहीं मानती थी। भला, मुझे कोई क्यों नहीं देखता, घूरता, या तेरे शब्दों में, निगलता।

अंबपाली : *(झुँझलाकर)* मैं क्या जानूँ!

मधूलिका : जानेगी, जानेगी। और जब जान जाएगी, मुझसे भर मुँह बातें भी नहीं करेगी।

अंबपाली : *(अरुण से रुखाई के शब्दों में)* तुम मुझे ले चलते हो या नहीं, अरुण?

अरुणध्वज : अच्छा चल, सोमरस की दुकान पर *(हाथ से बताते हुए)* थोड़ा पी ले, थकावट दूर हो जाएगी।

अंबपाली : *(चौंककर)* सोमरस! मौसी कहती थी, लड़कियों को सोमरस नहीं पीना चाहिए।

अरुणध्वज : हर मौसी मना करती है और हर लड़की पीती है -- यही होता आया है उस युग से, जब दुनिया में लड़कियाँ पैदा हुई और देवताओं ने सोमरस भेजा।

अंबपाली : देवताओं ने भेजा?

अरुणध्वज : हाँ, हाँ देवताओं ने भेजा! सुरों द्वारा सुर-लोक से भेजी गई होने के कारण ही तो यह अलौकिक पेय सुरा कहलाती है। शेषनाग को रस्सी बना, मंदराचल की मथानी से, क्षीर-सागर मथकर देवताओं ने इसे निकाला। सुधा नाम से उसे पीकर आप अमर हो गए और सुरा नाम से हमारे पास, इस मर्त्यभुवन में भेजा। हमने उसे सोमरस का सुंदर नाम दिया।

अंबपाली : इसे ही पीकर देवता अमर हुए?

अरुणध्वज : हाँ रे, इसे ही पीकर देवता अमर हुए और इसे ही पीकर हमारे ऋषियों ने ऋग्वेद की कविता की, सामवेद के गीत गाए और यजुर्वेद से यज्ञपूत हो अमृतपुत्र कहलाए।

अंबपाली : तो मौसी मना क्यों करती थीं?

मधूलिका : उस दिन वह फूल गूँथने से भी तो मना कर रही थीं न?

अंबपाली : ठीक रे मधु, बुढ़ियों की ऐसी ही बातें होती हैं। *(अरुण से)* लेकिन लगता है यह कैसा अरुण?

अरुणध्वज : कुछ मत पूछ, अंबे! जहाँ हलक के नीचे उतरा, सारी थकावट दूर, नस-नस में ताज़गी दौड़ने लगती है। थोड़ी देर में ही मालूम होता है, जैसे बाँहों के नीचे से पंख फूट निकले हैं और हम हवा में उड़े जा रहे हैं!

अंबपाली : जैसे सपने में लोग उड़ा करते हैं?

अरुणध्वज : बस, बस वैसे ही। कुछ क्षणों में ही यह हमें स्वर्गलोक में उड़ा ले जाता है! स्वर्गलोक में -- जहाँ अमरता है, शाश्वत यौवन है, संगीत है...

मधूलिका : *(बीच में ही बात काटकर)* और जहाँ सुनहले पंखोंवाले लाख-लाख देवकुमार हैं...

अंबपाली : *(झपटती हुई)* तू चुप नहीं होती!

अरुणध्वज : *(अंबपाली का हाथ पकड़े हुए)* चल-चल, ज़रा पी लें –

[एक हाथ से अंबपाली और दूसरे हाथ से मधूलिका को पकड़े अरुणध्वज हँसते हुए सोमरस की दुकान पर जाता है – युवक-युवतियों के रेल-पेल में तीनों घुस जाते हैं और एक मंच पर बैठकर सोमरस पीते हैं – एक-दूसरे को प्याले-पर-प्याले पिलाए जा रहे हैं –

उसी समय चार राजकुमारों के साथ पुष्पगंधा, वैशाली की आज तक की राजनर्तकी वहाँ पहुँचती है – संघ के प्रतिनिधित्व की हैसियत से ये पाँचों नई राजनर्तकी के लिए सर्वश्रेष्ठ सुंदरी का चुनाव करने को किशोरियों का निरीक्षण करते फिर रहे हैं – उनमें से एक राजकुमार की नज़र अंबपाली पर पड़ती है –]

पहला राजकुमार : *(पुष्पगंधा से)* भद्रे, ज़रा उस किशोरी को तो देखें।

पुष्पगंधा : कौन? वह? *(अंबपाली की ओर उँगली उठाती)*

दूसरा राजकुमार : *(उसी ओर उँगली करके)* वह? वही न?

पहला राजकुमार : हाँ, हाँ वही। कितनी अपूर्व सुंदरी! ऐसी सुंदरी इस उत्सव-मंडली में दूसरी नहीं है। क्यों भाई? *(तीसरे राजकुमार से)*

तीसरा राजकुमार : इतनी जल्दी मत कीजिए! हमें एक ऐसी सुंदरी को चुनना है जिसका जोड़ हमारे संघ की तरह ही संसार में न मिले। जो कीर्ति वृज्जिसंघ को प्राप्त है, उसके अनुरूप ही तो राजनर्तकी भी चुनी जानी चाहिए न? जिस गौरव को देवी पुष्पगंधा ने स्थापित किया है, उसकी रक्षा क्या हम इतनी जल्दबाज़ी करके कर पाएँगे?

पुष्पगंधा : कुमार, आपका कहना सही है, हमें जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए। लेकिन, वह कोई साधारण रूपसी नहीं मालूम होती है, कुमारो!

पहला राजकुमार : आप ठीक कहती हैं, मुझे शक है, देवसभा की उर्वशी भी इतनी सुंदर नहीं होगी। *(राजकुमारों से)* ज़रा, इसके एक-एक अंग को देखो,

भाइयो! उफ़; यह तो साँचे की ढली मालूम होती है – सुंदरता, मानो, नारी का रूप धरकर हमारे सामने साक्षात् खड़ी है!

तीसरा राजकुमार : *(गौर से निरीक्षण करते)* लेकिन, कुछ गँवई-सी मालूम होती है। क्यों, आप क्या समझते हैं? (दूसरे से पूछता है।)

दूसरा राजकुमार : लेकिन वृज्जिसंघ नगर और ग्राम का कोई भेद नहीं करता। यहाँ सबकी समता है। अपने गुण से हर नागरिक राजा हो सकता है, अपने रूप से हर सुंदरी राजनर्तकी के गौरव को प्राप्त कर सकती है। *(चौथे से, जो सबमें वयस्क है)* क्यों, आप नहीं कुछ बोल रहे?

चौथा राजकुमार : इसमें संदेह नहीं कि हमने जितनी सुंदरियाँ देखी हैं, उनमें यह सर्वश्रेष्ठ है। किंतु मेरा खयाल है, अपनी उत्तराधिकारिणी पसंद करने की सबसे ज्यादा जिम्मेवारी देवी पुष्पगंधा पर है। इसलिए, हम लोग इस पर ज्यादा विवाद न कर अंतिम निर्णय इन्हीं पर छोड़ दें।

पुष्पगंधा : यह आपकी कृपा है, लेकिन इससे हममें से किसी की ज़िम्मेवारी कम नहीं होती। हाँ, अच्छी बात हो, हम थोड़ा और घूमकर देख लें।

[इन पाँचों का दल आगे बढ़ता है – उधर सोमरस पीकर मस्त बनी अंबपाली अरुणध्वज और मधूलिका के साथ निकलती है – वह खूब हँस रही है – पहले की शरमीली लड़की नहीं है – प्रगल्भतापूर्वक हँसती जा रही है –]

अरुणध्वज : तुझे क्या हो गया है अंबे? कहीं इतना भी हँसा जाता है?

अंबपाली : *(उसकी आवाज़ लटपटा रही है, बीच-बीच में रुक जाती है)* कहीं इतना भी...हँसा जाता है। ह-ह-ह-ह-!! क्यों मधु, कहीं – इतना भी– हँसा – जाता है!! हा-हा-हा-हा!!!

मधूलिका : *(डाँटती-सी)* यह क्या अंबे?

अंबपाली : ह-ह-ह-ह!...ही-ही-ही!! यह क्या अंबे? यह क्या??...अरे, यह क्या रे मधु!...मधु!!

मधूलिका : *(नाराज़ी और हुकूमत के स्वर में)* तू चुप नहीं होती।

अंबपाली : *(घूरकर देखती)* चुप नहीं होती। चुप नहीं...हा-हा-हा-हा-...हो... हो...हो... हो...मधु! मधु!!... अरी, मैं उड़ी जा रही हूँ, रे मधु...मधु, पकड़ रे। रे...ये मेरे पंख...*(हाथों को हवा में डैनों-से फटकारने लगती है।)*

मधूलिका : *(उसके हाथों को पकड़ लेती है, अरुण से नाराज़ी में कहती है)* अरुण, तुमने यह अच्छा नहीं किया...

अरुणध्वज : तू घबरा नहीं, मधु, मैं इसे तुरंत अच्छा कर देता हूँ। नशा थोड़ी हरारत खोजता है। *(अंबपाली से)* नाचेगी नहीं रे!

अंबपाली : नाचेगी नहीं रे! मैं नाच रही हूँ रे । मैं नाच रही हूँ...रे...मधु...छोड़ रे मधु...*(झटके से हाथ छुड़ा लेती है और गति से हाथ-पैर चलाने लगती है)* मैं नाच रही रे...मधु...नाच रे!...अरुण नाच रे *(वह दौड़कर अरुण का हाथ पकड़ लेती है)* नाच...रे...नाच...

[अरुण उसके हाथा में हाथ दिए उसे रंगभूमि में ले जाता है – मधूलिका भी पीछे-पीछे जाती है – अनेक युवक-युवतियों का नृत्य हो रहा है – अंबपाली और अरुण भी नाचने लगते हैं – अरुण थक जाता है, लेकिन अंबपाली अकेली नाचती ही रह जाती है। लोगों का ध्यान धीरे-धीरे उसके अपूर्व नृत्य की ओर जाता है – सब अपना-अपना नृत्य बंद कर उसी का नृत्य देखने लगते हैं – चारों ओर से हर्षवर्धन और पुष्पवर्षा हो रही है –

पुष्पगंधा भी अपनी मंडली के साथ वहाँ पहुँच जाती है – वह और चारों राजकुमार उसका नृत्य देख मुग्ध हो जाते हैं – राजकुमारों का स्वीकृति-सूचक रुख देख पुष्पगंधा आगे बढ़ती है और उसके गले में राजनर्तकी की जयमाल डाल देती है – चारों राजकुमार चिल्ला उठते– 'राजनर्तकी की जय'! 'राजनर्तकी की जय'!! *उनकी जय की*

ध्वनि-प्रतिध्वनि उपस्थित जनता की ओर से होती है; इस जयकार से चकित हो, मानो कुछ होश में आ, अंबपाली मधूलिका के पास दौड़ जाती है, जो वहाँ खड़ी टकटक उसे देख रही थी –]

अंबपाली : मधु,मधु...राजनर्तकी...राजनर्तकी !

पुष्पगंधा : *(उसके निकट पहुँचकर)* हाँ, राजनर्तकी ! कल तक की राजनर्तकी मैं; आज से राजनर्तकी तुम।

अंबपाली : राजनर्तकी !...मैं...मैं *(आश्चर्य से आँखें विस्फारित करती)* राजनर्तकी ?...मैं राजनर्तकी ?...मैं...

पुष्पगंधा : हाँ, हाँ, तुम राजनर्तकी, तुम !

अंबपाली : *(अचानक विक्षिप्त-सी होकर)* मधु, मैं राजनर्तकी...अरुण, मैं राजनर्तकी ! राजनर्तकी... ह-ह-ह-ह...मैं राजनर्तकी...हा-हा-हा-हा...

मधूलिका : *(व्याकुल होकर)* अंबे, क्या बक रही है, अंबे?

अंबपाली : बक रही?...मैं – बक – रही? *(फिर उत्तेजित होकर)* नहीं, नहीं, मधु, मैं राजनर्तकी...मैं राजनर्तकी...रे...मैं राजनर्तकी...हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुट...हो-हो-हो-हो... मेरे चरणों पर रे, मेरे चरणों पर...*(मधूलिका की आँखों को देखकर)* मधु, तू घूर क्यों रही है रे...मैं राजनर्तकी।

अरुणध्वज : तू होश में नहीं है अंबे ! ओहो ! मधु, मैंने क्या किया? *(वह विह्वल-सा दिखाई देता है।)*

पुष्पगंधा : कुछ बुरा नहीं किया आर्य ! तुम सौभाग्यशाली हो, तुमने संघ को राजनर्तकी दी। तुम कौन हो, कहाँ के हो? कौन वह सौभाग्यशाली वंश है? कौन वह सौभाग्यशाली ग्राम है?

अरुणध्वज : *(विह्वलता में ही)* मधु, मधु, यह क्या हो रहा है? ओहो, अंबे, अंबपाली, यह क्या? *(थोड़ा शांत हो पुष्पगंधा से)* भद्रे, हम आनंदग्राम से आए हैं...ओहो, यह क्या?

अंबपाली : *(प्रमत्त बनी बके जा रही है)* मैं राजनर्तकी...अरुण...अरुण...मैं राजनर्तकी !...ह-ह-ह-ह...मधु...तू हँसती क्यों नहीं रे ?...मैं राजनर्तकी... हज़ार-हज़ार...हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुट...मेरे चरणों पर लोटेंगे रे...चरणों पर...हा-हा-हा-हा...तुम हँसते क्यों नहीं हो अरुण ? हँसो...हँसो... हँसो.. . हा-हा-हा-हा...

[अरुण के चेहरे का रंग उड़ जाता है – वह काँप उठता है – फिर मूर्ति-सा खड़ा देखता रहता है – मधूलिका कभी अंबपाली और कभी अरुण का चेहरा देखती किंकर्तव्यविमूढ़ बन रही है – इधर लोग पुष्पवर्षा और आनंद-ध्वनि किए जा रहे हैं – उसी समय एक रथ आकर नज़दीक में खड़ा होता है – पुष्पगंधा अंबपाली का हाथ पकड़कर रथ पर चढ़ा लेती है – खिल-खिल हँसती अंबपाली अरुण और मधूलिका की ओर मुखातिब हो बोलती है –]

मधु...मैं राजनर्तकी...अरुण, मैं राजनर्तकी...राजनर्तकी...राजनर्तकी... हा-हा-हा-हा...हज़ार-हज़ार राज...

['नई राजनर्तकी की जय ', 'अंबपाली की जय ' *पुष्पगंधा कहती है– सब उसके जयनाद में साथ देते हैं – इसी तुमुल जयनाद में रथ चल पड़ता है –अरुणध्वज पत्थर की मूर्ति-सा खड़ा है – मधूलिका थोड़ी दूर* 'अंबे !' 'अंबे'। *चिल्लाती दौड़ती है – फिर गिर पड़ती है।]*

4

[वैशाली का राजकीय वसंतोद्यान – बीच में एक बँगला, पुष्पों से घिरा, लताओं से लदा – सुबह की सुनहली धूप से सब चीज़ें जगमग हो रहीं –

बँगले के कमरे के मुँह पर जो कामदार पर्दा झूल रहा है, वह हटता है — भीतर से अंबपाली निकलती है — आँखों में खुमार — चेहरे पर नींद की छाया — चकित नेत्रों से इधर-उधर देखती है— बरामदे पर आकर पुकारती है—]

अंबपाली : कोई है?

[एक परिचारिका दौड़कर आती है — उसके सामने झुककर अभिवादन करती और बोलती है —]

परिचारिका : भद्रे, जो आज्ञा।

अंबपाली : *(आश्चर्यमयी मुद्रा में)* आज्ञा? मैं कहाँ हूँ? उफ़, यह कैसा सपना?

परिचारिका : नहीं आर्ये, यह सपना नहीं, प्रत्यक्ष सत्य है। यह वैशाली का राजकीय वसंतोद्यान है और मैं हूँ आपकी परिचारिका।

अंबपाली : परिचारिका? *(झिझककर)* मुझे किसी की परिचर्या की ज़रूरत नहीं। क्या मैं बूढ़ी हूँ, रोगी हूँ?

परिचारिका : *(किंचित् मुसकान से)* ज़रूरत पड़ेगी, पड़ेगी आर्ये।

अंबपाली : (उत्तेजना में) नहीं, नहीं! *(उसाँसें लेती हुई)* आह, मधु कहाँ, अरुण कहाँ? *(परिचारिका से)* बता, बताती क्यों नहीं?

[बँगले के बरामदे के दूसरे छोर से पुष्पगंधा आती दिखाई पड़ती है — उसकी आहट सुन परिचारिका उस ओर देखती है और ससंभ्रम हट जाती है — अंबपाली पुष्पगंधा को घूर-घूरकर देखती है — वह निकट पहुँचती है— परिचारिका अंततः वहाँ से हट जाती है —]

पुष्पगंधा : क्यों? तबीयत अच्छी है न?

अंबपाली : आप कौन हैं?

पुष्पगंधा : भूल गई?

अंबपाली : भूल गई! *(गौर से देखती है।)*

पुष्पगंधा : कहीं देखा नहीं?

अंबपाली : *(सोचती हुई)* सपने में शायद कभी देखा है? आप कौन हैं?

पुष्पगंधा : *(मुसकराती)* मुझे लोग पुष्पगंधा कहते हैं, यह नाम कभी सुना है?

अंबपाली : नाम तो यह सुना है – वृज्जिसंघ की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी, वैशाली की राजनर्तकी।

पुष्पगंधा : ठीक, कल तक मैं वृज्जिसंघ की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी थी, वैशाली की राजनर्तकी थी। लेकिन आज मैं वह नहीं रही।

अंबपाली : आज क्यों नहीं रहीं?

पुष्पगंधा : यह भी भूल गई? रात का सपना याद कर – तू जो रात राजनर्तकी चुनी गई, वैशाली की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी मानी गई।

अंबपाली : *(कातरता से)* भद्रे, मैं सपनों से परेशान हूँ। मेरी मधु कहाँ? मेरा अरुण कहाँ? अरुण...*(चिल्लाती है।)*

पुष्पगंधा : *(उसकी आवाज़ में गंभीरता आ जाती है)* यों लोग नहीं चिल्लाते अंबे! तू जहाँ खड़ी है, उस स्थान की मर्यादा देख। वृज्जिसंघ की कुमारियाँ मर्यादा का उल्लंघन नहीं करतीं। जिस दिन हमारी कुमारियाँ मर्यादा छोड़ देंगी, संघ की नींव हिल जाएगी। नारियाँ राष्ट्र की इमारत की नींव की ईंट होती हैं, नींव की चंद ईंटें हटा दो, बड़ी-से-बड़ी इमारत भहरा पड़ेगी।

अंबपाली : मर्यादा... मर्यादा मुझसे टूटी है क्या भद्रे? क्षमा करें । मुझे मेरी मधु से, मेरे अरुण से मिलाइए। आह, मेरी मौसी! मैं कहाँ से वैशाली आई, मैं सचमुच मेले में खो गई! *(उसकी आँखों में आँसू छलछला आते हैं।)*

पुष्पगंधा : *(ज़रा-सी मुसकराती हुई)* तू खो गई, और संघ ने नर्तकी पाई। कोई खोता है, तभी कोई पाता है, अंबे!

अंबपाली : *(गिड़गिड़ाती हुई)* आर्ये, अब सपने में न रखिए – मुझे मेरे साथियों से मिलाइए, या आनंदग्राम भिजवाइए।

पुष्पगंधा : आनंदग्राम रथ गया है, तेरी मौसी आती ही होंगी। मधु और अरुण संघ के अतिथि-भवन में हैं। तू ज़रा प्रसाधन कर ले, इसी रूप में मिलेगी उनसे? अब तू अपने पद-गौरव को समझ।

अंबपाली : पद-गौरव?

पुष्पगंधा : यों भूलने, विभोर होने से काम नहीं चलता, अंबे! अब तू राजनर्तकी है। कल संघ ने तुझे राजनर्तकी के रूप में अभिषिक्त जो किया। जिस अभिषेक-मंगल-पुष्करिणी के जल की कुछ बूँद पाने के लिए कोशल और मगध की महारानियाँ तरसती रहती हैं, वह सरोवर अब तेरे अंगराग से आए दिन रंगीन और सुवासित बनेगा। वृज्जिसंघ के जिन राजकुमारों के गर्वोन्नत सिर हिमालय के शृंग की तरह उन्नत और प्रदीप्त हैं, जिन्हें कोई पदाक्रांत कर नहीं सकता, झुका नहीं सकता, उन्हीं सिरों के हज़ार-हज़ार मुकुट तेरे चरणों पर अवनत होंगे, लोटेंगे। तुझे इस गौरव के अनुरूप ही अपने को ढालना होगा, अंबे!

अंबपाली : क्षमा कीजिए, आर्ये! मैं राजनर्तकी नहीं बनना चाहती।

पुष्पगंधा : कोई चाहकर राजनर्तकी नहीं बन पाती, अंबे! हमारा यह संघ जंबूद्वीप भर में इसीलिए प्रसिद्ध है कि यहाँ की नारी और नर अपने व्यक्तित्व को संघ पर समर्पित कर देते हैं। संघ जिसको जो ज़िम्मेवारी देता है, वह उसे निभाता है। संघ की आज्ञा पर हमारे सैनिक समरक्षेत्र में अपनी गरदन हँसते-हँसते कटा डालते हैं; हमारे नाविक अपनी पूरी ज़िंदगी बजड़ों पर ही बिताकर, नागरिक जीवन के सुख-ऐश्वर्य से दूर रहकर हमारे संघ को नाना तरह के धनरत्न से विभूषित करते हैं; तो फिर तुम-हम उसी संघ की आज्ञा पर अपनी ज़िंदगी को संघ के मनोरंजन में उत्सर्ग कर दें, तो इसमें अनौचित्य क्या है, आश्चर्य क्या है?

अंबपाली : क्या यह संघ की ज़बरदस्ती नहीं?

पुष्पगंधा : जिस दिन हम ज़िम्मेवारी को ज़बरदस्ती समझने लगेंगे, उसी दिन संघ का पूरा शीराज़ा बिखर जाएगा, अंबपाली! वृज्जिसंघ हम सबको स्वतंत्रता की सुरक्षा प्रदान करता है। वृज्जिसंघ स्वाधीन नर-नारियों का संघ है, उसमें ज़बरदस्ती कहाँ? हाँ, उनके द्वारा दी गई सुरक्षा और स्वाधीनता की भरपाई अगर हम अपनी ज़िम्मेवारी अच्छी तरह निभाकर करते हैं, तो, इसमें ज़बरदस्ती कहाँ है, अंबे! याद रख, हम जिससे पाते हैं, उसे कुछ देना भी होता है।

अंबपाली : लेकिन, यह अजीब देन है। सर्वश्रेष्ठ सुंदरी और राजनर्तकी? उफ़! *(उसासें लेती है।)*

पुष्पगंधा : अंबे! ज़िंदगी की सार्थकता मनमाना जीना या लंबी आयु पाना नहीं है। ज़िंदगी की सार्थकला है किसी बड़े काम के लिए उत्सर्ग कर दिया जाना—फिर वह उत्सर्ग की हुई ज़िंदगी एक दिन की हो या सौ बरस की, वह खाँड़े की धार पर उतरे या चंदन की चिता पर चढ़े! *(कहते-कहते उसका मुँह तमतमा जाता है; उसके चुप होते ही अजीब सन्नाटा छा जाता है।)*

अंबपाली : *(भयभीत-सी)* देवि!

पुष्पगंधा : *(जैसे उसकी आवाज़ सुनी ही न हो)* और एक बात! तूने सौंदर्य का महत्त्व ही नहीं जाना!

अंबपाली : मैं यह सब झंझट क्या जानूँ, देवि!

पुष्पगंधा : झंझट नहीं है, तत्त्व है तत्त्व। दुनिया में तीन चीज़ों की आकांक्षा सबको होती है—धन की, ज्ञान की, सौंदर्य की। इनमें सौंदर्य की महिमा सबसे बड़ी है। एक गरीब आदमी परिश्रम और संचयवृत्ति से धनी बन सकता है, एक मूर्ख अध्ययन और अभ्यास से ज्ञान प्राप्त कर सकता है। लेकिन, लाख सिर पटककर भी कोई कुरूप सुंदर नहीं बन सकता। सौंदर्य सिर्फ़ विधाता के हाथों से गढ़ा जाता है—यह सोलह आने दैवी देन है। यह दैवी देन तुच्छ मानवीय कामनाओं की पूर्ति में

न व्यय होकर उच्च आदर्श की पूर्ति में लगे, इससे बढ़कर इसका क्या सदुपयोग हो सकता है, अंबे?

अंबपाली : तो आप राजनर्तकी की ज़िंदगी को उच्च आदर्श की पूर्ति मानती हैं?

पुष्पगंधा : ज़रा सोच तो, अपनी सभी व्यक्तिगत रुचियों, इच्छाओं, आकांक्षाओं को ठुकराकर, लात मारकर अपने-आपको संघ के प्रत्येक सदस्य के मनोरंजन के लिए अर्पित कर देना – अपने व्यक्ति को समष्टि में विलीन कर देना – इससे बढ़कर आदर्श की उच्चता एक सुंदरी नारी के लिए क्या हो सकती है? सुंदरी नारी – जिसका कदम-कदम डगमगाता है! वृज्जिसंघ की कुमारियाँ ही इतनी बड़ी साधना का साधन कर सकती है, अंबे!

अंबपाली : *(रुखाई से)* साधना का साधन या आत्मा का हनन?

पुष्पगंधा : शुरू में ऐसा ही भ्रम होता है। किंतु तथ्य यह है कि ज्यों ही हमने अपने को उनके लिए अर्पित कर दिया, हम उनके मनोरंजन की चीज़ नहीं रह जातीं, बल्कि वे ही अपने को हमारे मनोरंजन के साधन बना डालते हैं – हमें अपना सिर उनके निकट झुकाने की ज़रूरत नहीं होती, उन्हीं के हज़ार-हज़ार राजमुकुट हमारे चरणों की धूल चाटने लगते हैं! हम नारियों की भी एक महिमा है, यह क्यों भूल जाती है, भोली लड़की!

अंबपाली : *(दीर्घ उच्छ्वास के साथ, धीमे स्वर में)* आह, मेरा अरुण।

पुष्पगंधा : अरुण! अरुण भी तो वृज्जिसंघ का एक सदस्य है। कौन उसे तेरे पास आने से रोक सकता है? जा, तू जल्द प्रसाधन तो कर ले। चयनिके! *(पुकारती है।)*

[पुकार सुनकर परिचारिका शीघ्र उपस्थित होती है – उदास, अनमनी अंबपाली उसके साथ बँगले के भीतर जाती है – पुष्पगंधा सामने के उद्यान में घूमती है – रह-रहकर काँप उठती है – अंततः उसकी आँखों से आँसू झरने लगते हैं – क्यों? किसके लिए?]

5

[वेगवती नदी की पतली धारा संध्या की किरणों से रंगीन हो रही है – आनंदग्राम की नारियाँ घड़े लिए आती और जल ले जाती हैं – उनका आना-जाना लगा है –

सुमना घड़ा लिए आती दीखती है – उदास, उतरा हुआ, अनमना है उसका चेहरा –

आखिर घड़े में पानी लेकर जाना ही चाहती है कि मधूलिका कलसी लिए आती दिखाई पड़ती है – वह रुक जाती है – मधूलिका उसे देख लपककर पहुँचती और पूछती है –]

मधूलिका : मौसी, सुना, तुम फिर वैशाली गई थीं।

सुमना : हाँ, गई थी। अंबपाली ने रथ भेजा था।

मधूलिका : अब तो वह राजरानी हो गई, मौसी! तकदीर इसी को कहते हैं।

सुमना : लेकिन वह जो इसे तकदीर माने। कहती थी – मौसी, सुख-ऐश्वर्य से भरी यह वैशाली मुझे नहीं सुहाती; मेरा मन तो आनंदग्राम की आम्रवाटिका या वेगवती के तट पर ही चक्कर काटता रहता है! तुझे भी बुलाया है– एक दिन ज़रा हो आओ न मधु?

मधूलिका : मैं उस ओर पैर बढ़ाने की हिम्मत भी नहीं कर सकती, मौसी! सारी वैशाली स्वप्नपुरी-सी मालूम होती है। मैं हमेशा ही सपने से भागती रही हूँ। *(कुछ सोचकर)* अरुण की चर्चा करती थी?

सुमना : की थी; कई बार की। लेकिन मैं क्या बताती भला?

[दूर से आती वंशी की हृदयवेधक ध्वनि सुनाई पड़ती है – ध्वनि कानों में पड़ते ही मधूलिका सिहर उठती है – उसके चेहरे पर करुणा की छाया दौड़ जाती है – वह स्वर में विभोर-सी हो जाती है – सुमना का ध्यान भी उस ओर जाता है – वह घड़ा रख देती और सुनने लगती है– मधूलिका की कलसी आप ही कमर से खिसक जाती है – तब, जैसे चौंककर, वह कहती है –]

मधूलिका : यह अरुण की ही वंशी है, मौसी!

सुमना : पहचानती हूँ, मधु, पहचानती हूँ। इस वंशी को अब इस आनंदग्राम में कौन नहीं पहचानता?

[मालूम होता है, जैसे वंशी की ध्वनि निकट से निकटकर होती जाती है — बातचीत में गर्क होने पर भी दोनों इसको महसूस करती हैं — पहले मधु उस ओर नज़र करती है, फिर सुमना — दूर पर, नदी के कछार पकड़े, वंशी बजाता, आता हुआ अरुणध्वज दिखाई पड़ता है —]

मधूलिका : मौसी, वह, वही है न?

सुमना : हाँ, वही तो है।

मधूलिका : आज इधर कहाँ भटक पड़ा? मालूम होता है, शायद उसे खबर हो गई कि तुम वैशाली से लौट आई हो? *(सजल नेत्र और कातर वचन में)* देख तो, मौसी, इन तीन महीनों में ही वह क्या से क्या हो गया है!

सुमना : मधु! ऐसे मौकों पर छाती को कठोर बनाना पड़ता है, बेटी! चल, हम नदी के ऊपर चलें, कछार पर ही उससे मिलें।

[दोनों तट के ऊपर कछार पर आती हैं — सूरज डूबने जा रहा है — वह छोटा-सा बादल का टुकड़ा आधे आसमान को ढक चुका है — अरुण सिर नीचा किए पगडंडी पकड़े वंशी बजाता आ रहा है — उसकी दशा देख सुमना की आँखों में सावन-भादों उमड़ आते हैं — मधूलिका भर्राई आवाज़ में पुकारती है —]

मधूलिका : अरुण!

अरुणध्वज : *(सिर उठाकर दोनों को घूरता है, फिर बोलता है)* कौन? मौसी? प्रणाम, मौसी!

सुमना : अरुण, मैं वैशाली गई थी, अंबा तेरी याद करती थी।

अरुणध्वज : *(प्रश्नवाची स्वर में)* याद! करती थी? अंबा मुझे याद करती थी? क्यों मौसी?

सुमना : हाँ, हाँ, याद करती थी। बहुत याद करती थी। एक दिन जाओ न! मधूलिका को भी लेते जाना!

अरुणध्वज : *(करुणामय हँसी के साथ)* मधूलिका को लेते जाना! खूब! चल रे मधु, चल। वैशाली चल। चल रे, तुझे भी राजनर्तकी बना आऊँ। तू भी राजनर्तकी बनना; हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुटों को ठुकराना!! हाँ, हाँ, चल। कब चलती है, रे?

मधूलिका : *(आँचल से आँसू पोंछती)* मौसी!

सुमना : अरुण, यों होश मत खो!

अरुणध्वज : *(गंभीर होकर)* होश! मैं खोऊँगा? नहीं मौसी, मैं होश नहीं खो सकता। मैं होश खोऊँगा तो अंबा की याद कौन करेगा? नहीं-नहीं, मैं होश नहीं खो सकता। अच्छा, बता – अंबा कैसी है?

सुमना : *(बीच ही में बात काटकर)* यह तू क्या हुआ जा रहा है, बेटा?

अरुणध्वज : उस दिन माँ कह रही थी, तू क्या हुआ जा रहा है, बेटा? आज मौसी कह रही है, तू क्या हुआ जा रहा है बेटा? क्या मैं सचमुच कुछ हुआ जा रहा हूँ मौसी!

[तब तक चारों ओर छाए बादल में अचानक बिजली कौंध जाती है – फिर ज़ोरों से बादल गरज पड़ता है – अरुण आसमान की ओर देखता और 'मौसी, प्रणाम' *कहकर जिस रास्ते आया था, उसी से द्रुतपद भागता है – सुमना और मधूलिका विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखती रह जाती हैं।]*

दूसरा अंक

1

[वैशाली का शरद उपवन – बीच में एक तालाब, जिसमें कुमुद के शत-शत फूल खिले हुए– तालाब से थोड़ा हटकर राजनर्तकी का शरद-प्रासाद – बिलकुल सफ़ेद, दूध का धोया-सा– उसका प्रतिबिंब तालाब में भी दिखाई पड़ता है –

प्रासाद की छत पर, खुले आसमान के नीचे, उजला दपादप फ़र्श बिछा – चारों ओर कुमुद के बंदनवार लटके – बंदनवार के बीच-बीच चाँदी के पिंजड़े टँगे, जिनमें खंजन खिलवाड़ कर रहे – फ़र्श के बीच में कुछ ऊँचा मंच, जिसका कारचोबी का काम चमचम कर रहा – मंच पर सोमरस से भरी चाँदी की सुराहियाँ और चुन्नी की प्यालियाँ रखी हैं –

छत पर परिचारिका के साथ अंबपाली आती है –

यह पाँच वर्ष पहले की अंबपाली नहीं रह गई है – तब वह किशोरी थी, अब युवती है– उसके अंग-अंग भर चुके हैं – चेहरे पर ओज है, पैरों में गंभीरता – सिर कहता है, आसमान मेरा; पैर कहते हैं, ज़मीन मेरी –

वह चाँद को एकटक निहारती है – फिर सारे आसमान का जैसे निरीक्षण कर जाती है– उसके बाद खंजन के एक पिंजड़े के निकट जाती और उसे हिला देती है – खंजन पंख फड़फड़ाने लगते हैं, वह मुसकराती है – पिंजड़े से हटकर वह फ़र्श के मंच पर जाती और मसनद से उठँगकर बैठती है – परिचारिका से कहती है –]

अंबपाली	:	चर्यनिके, थोड़ा सोमरस पिला। *[सुराही से ढालकर चयनिका प्याली में उसे सोमरस देती है — कई प्यालियाँ गट-गट पी जाती है — फिर कहती है — 'अभी रहने दे' और चाँद की ओर देखती लेट जाती है — थोड़ी देर तक उसे देखते रहने के बाद चयनिका से पूछती है —]* चर्यानके, आदमी चाँदनी क्यों पसंद करता है, तू जानती है?
चयनिका	:	शायद इसलिए कि चाँद बहुत सुंदर है और 'सुंदरे किं न सुंदरम्'!
अंबपाली	:	खूब! 'सुंदरे किं न सुंदरम्'! लेकिन चाँद की सुंदरता का भंडा उसी दिन फूट गया, जब एक नारी के सौंदर्य पर मुग्ध हो, देवताओं के राजा समेत, वह ज़मीन पर उतरा और इनाम में अपने शरीर का यह काला धब्बा पाया। तूने अहल्या का नाम सुना है, चुन्नी?
चयनिका	:	वही न, जिनकी गिनती पंचकन्याओं में होती है?
अंबपाली	:	हाँ, वही। उन्होंने अपने सौंदर्य की महिमा से देवों को, देवराज को, ज़मीन पर उतरने को लाचार किया, हम नारियों की गरिमा बढ़ा दी, अभिशप्त होने पर भी पंचकन्याओं में उनकी पहली गिनती होती है, वह प्रातः स्मरणीया हैं। *(हाथ जोड़कर मन-ही-मन प्रणाम करती है)* चुन्नी, कुछ और तो अटकल लगा?
चयनिका	:	मेरी समझ में कुछ नहीं आता, आर्ये!
अंबपाली	:	नहीं आता? तो सुन। आदमी चाँदनी इसलिए पसंद करता है कि इसमें एक कुहेलिका है, प्रहेलिका है। सत्य के सीधे-सादे वास्तविक रूप से आदमी घबराता है। हमेशा देखोगी, विज्ञान की अपेक्षा आदमी कविता अधिक पसंद करता है।
चयनिका	:	कविता तो मुझे भी बहुत पसंद आती है, भद्रे!
अंबपाली	:	सभी को पसंद है। आदमी निखालिस चीज़ कभी नहीं पसंद करता। वह निखालिस न सत्य पसंद करता है, न असत्य; न ज्ञान पसंद करता है,

न अज्ञान। वह दोनों का सम्मिश्रण खोजता है। आदमी अंधकार नहीं पसंद करता, क्योंकि वह उससे डरता है। यों ही सूरज की रोशनी भी उसे पसंद नहीं, क्योंकि वह सब चीज़ों को उसके सामने नंगा-सा करके रख देती है। चाँदनी वह इसलिए पसंद करता है कि उसमें न तो अंधकारवाला डर है, न रोशनीवाला नंगापन!

[इसी समय दूसरी परिचारिका नीचे से आती है; कहती है —]

दू. परिचारिका : राजकुमार वसुबंधु चार-पाँच राजकुमारों के साथ पधारे हैं, आर्ये!

अंबपाली : *(अभिमान से ओतप्रोत; भौंहें चढ़ाकर)* कह दे, अभी ठहरें। और सुन,जब तक सब राजकुमार न आ जाएँ, उन्हें नीचे ही बैठाती जाना। जा —

[दूसरी परिचारिका जाती है।]

थोड़ा सोमरस ला, चुन्नी!

[चयनिका सोमरस देती जाती है, वह प्याली पर प्याली खाली करती जाती है — लगातार उसे यों पीते देखकर चयनिका भयभीत हो जाती है— उसके हाथ काँपने लगते हैं — सोमरस की कुछ बूँदें मंच पर छलक जाती हैं — अंबपाली इसे देखती है और कहती है —]

अरे, तेरे हाथ क्यों काँप रहे हैं रे! दे, दे। देती जा; देती जा। बड़ी अच्छी चीज़ है यह चयनिके! सब कुछ भुला देती है, आनंदलोक में पहुँचा देती है।

[नीचे से फिर परिचारिका आती है और अभिवादन कर कहती है—]

दू. परिचारिका : नीचे राजकुमारों का ठट्ठ जुटा है, भद्रे! वे कहते हैं, आज शरद-पूनो है, विलंब क्या उचित है?

अंबपाली : *(चयनिका से)* हाँ, हाँ, आज शरद-पूनो है रे। मैं यह भी भूली जा रही थी। आज ही कृष्ण ने लीला रचाई थी न! बीच में कृष्ण, चारों ओर गोपियाँ। नीचे जमुना कलकल कर रही, ऊपर चाँद हँस रहा। आज

अंबपाली भी रास रचाएगी; इस पूनो के चाँद के नीचे रस की यमुना बहाएगी। *(दूसरी परिचारिका से)* जा — उन्हें भेज।

[परिचारिका नीचे जाती है — राजकुमारों का ठट्ठ आने लगता है — चयनिका सुराही से सोमरस ढालती है — अंबपाली अपने हाथों से उन्हें सोमरस देती जाती है — उनके सोमरस पीने के बाद अंबपाली खड़ी होती है, अँगड़ाई लेती है, एक बार चाँद को देखती है, फिर गाने और नाचने लगती है —]

कह गई यह चाँदनी —
सो रही मैं आज उन्मन
बह रही थी पवन सनसन
अधर गुनगुन
चरण रुनझुन
स्वप्न की तसवीर-सी उतरी परी उन्मादिनी।
कौन थी, क्या चाँदनी?

[बीच-बीच में अंबपाली किसी राजकुमार का हाथ पकड़कर नाचने लगती है — वह निहाल हो उठता है, दूसरे की भवों पर बल पड़ जाते हैं — उसकी भावभंगी देख नाचती ही नाचती वह सोमरस की प्याली पर प्याली उन्हें देने लगती है — सब मस्त होकर नाचने लगते हैं — इस शरद में भी सबके चेहरे पर पसीने की बूँदें हैं — अंबपाली का चेहरा तारा-मंडित शरद-चंद्र-सा लग रहा है।]

2

[वैशाली में दूसरी बार भगवान बुद्ध देव पधारे हैं और अंबपाली की आम्रवाटिका में ठहरे हैं –

इस खबर से ही सारी वैशाली में हलचल मच जाती है और वहाँ के नागरिक और नागरिकाएँ अपने-अपने रथ सजाकर उस आम्रवाटिका की ओर चल पड़ते हैं –

अंबपाली को खबर होती है, वह भी अपने सजे-सजाए रथ पर चढ़कर चल पड़ती है –

आम्रवाटिका के द्वार पर रथ से उतर, अंबपाली अपनी परिचारिका चयनिका को बुद्ध देव के पास आज्ञा लाने भेजती हे –

आम्रवाटिका के मध्य में भगवान बुद्ध शिष्यों के साथ विराजमान हैं – बीच में एक ऊँचा आसन है, जिस पर वह बैठे हैं – सिर, भवें, दाढ़ी, मूँछ सबके बाल मुड़े हुए – वह बिलकुल ध्यानमग्न हैं – उनकी बगल में उनके प्रधान शिष्य आनंद हैं और आसन के नीचे उनका शिष्य समूह – सबकी वेशभूषा बुद्ध की ही तरह की –

चयनिका को आते देख एक शिष्य बढ़ता और उसके हाथ का एक पुर्जा आनंद को लाकर देता है – पुर्जा पढ़कर, ध्यानस्थ बुद्ध जब आँखें खोलते हैं, तब आनंद उनसे कहते हैं –]

आनंद : भगवान, अंबपाली आपके दर्शन चाहती है।

भगवान बुद्ध : *(गंभीर भाव से)* अंबपाली?

आनंद : हाँ, भगवान, वैशाली की राजनर्तकी।

भगवान बुद्ध : धर्म का मार्ग सबके लिए खुला है, आनंद! *(चयनिका यह सुनती है और सिर झुकाकर चल देती है – उसके कुछ दूर निकल जाने के बाद)* लेकिन एक बात है आनंद! अंबपाली के बारे में मैंने जो कुछ सुन रखा है, मैं चाहता हूँ, उसके आने के पहले हमारे सभी शिष्य आँखें मूँद लें।

आनंद : *(विस्मित होकर)* आँखें मूँद लें?

भगवान बुद्ध : तुम्हें आश्चर्य हो रहा है, आनंद!

आनंद : भगवान, आश्चर्य होने की बात ही है। हम भिक्षु हैं, कोई आए, कोई जाए, हम पर उसका असर क्या हो? क्यों हो? भिक्षुओं के बारे में ऐसा सोचना क्या उन पर अविश्वास या उनका अपमान नहीं है? *(आनंद का चेहरा लाल हो उठता है।)*

भगवान बुद्ध : यहाँ अपमान और अविश्वास की कोई बात नहीं है, आनंद! हम तो धर्म के मध्यम मार्ग के अनुयायी हैं। आज भी मेरे कानों को निरंजना के तीर का वह स्वर्गिक गान नहीं भूलता – 'वीणा के तार को इतना मत ऐंठो कि वह टूट जाए, न इतना ढीला रखो कि शब्द ही न निकले!'

आनंद : लेकिन सम्यक् समाधि के बाद हममें इतनी साधना तो होनी चाहिए कि हमारा मन झकोरे में भी मणिदीप-सा निर्धूम और एकरस बना रहे!

भगवान बुद्ध : तुमने ठीक कहा, आनंद! लेकिन एक बात हमें नहीं भूलनी है। हम बच्चों की तरह दीपशिखा को चमकता खिलौना समझकर उसके पकड़ने से कहीं अपना हाथ न जला लें।

आनंद : इसे स्पष्ट किया जाए, भगवान।

भगवान बुद्ध : सुनो, सौंदर्य अगर सच्चा सौंदर्य है, तो उसमें एक जादू होता है। जादू और कुछ नहीं, सम्मोहन है। जो सतत चेतन, हमेशा चौकस मन नहीं है उस पर सम्मोहन का असर होकर रहेगा; और कितने ऐसे सौभाग्यशाली हैं, जिन्होंने मन पर स्थायी लगाम दे रखी है? इसलिए ऐसे मौकों से बचकर ही रहना श्रेयस्कर है। अँधेरी रात में कभी साँप की आँखें तुमने देखी हैं? दीपशिखा-सी जलती वे सुंदर, मादक आँखें! उन आँखों से आँखें लड़ाना कोई बुद्धिमानी नहीं है, आनंद!

आनंद : लेकिन, इस तरह तथ्य से कब तक आँखें मूँदी जा सकती हैं, भगवान?

भगवान बुद्ध : तो, तुम तार को ऐंठते जाने वाली बात का समर्थन कर रहे हो। इसी ऐंठन में कितनी ऐसी वीणाएँ टूट गईं, जिनकी झंकार से संसार में न जाने कितने अधिक सुख का गुंजार हो पाता। प्राचीन काल में हमारे कुछ ऋषियों ने यही गलती की थी। तपस्या के झोंके में पहले तो तपते-तपते शरीर गला लिया, फिर उसके प्रतिक्रियास्वरूप एक रंभा, एक मेनका, एक उर्वशी की मुसकान पर सारी साधना की अंजलि चढ़ा दी। मध्यम मार्ग पकड़ो, आनंद, मध्यम मार्ग!

आनंद : भगवान की आज्ञा सिर आँखों पर। भिक्षुओ, आप आँखें मूँद लें।

[सभी भिक्षु आँखें मूँदते हैं – आनंद भी आँखें मूँद लेते हैं – भगवान बुद्ध आनंद को भी आँखें मूँदते देखकर कहते हैं –]

भगवान बुद्ध : तुम्हें इसकी ज़रूरत नहीं है, आनंद! आनंद तो बुद्ध की छाया है, जिसका बुद्ध पर असर नहीं हो सकता, उसका आनंद पर भी असर नहीं होगा!

[आनंद आँखें खोल देते हैं – दोनों दूर पर आती हुई अंबपाली को देखते हैं – भगवान बुद्ध कहते हैं –]

देखते हो, आनंद, यह रूप?

आनंद : सचमुच, भगवान, ऐसा रूप मैंने कहीं नहीं देखा था।

भगवान बुद्ध : यह अलौकिक रूप है! मुझे यह देखकर, आनंद, बुद्धत्व प्राप्ति वाले दिन के दृश्य याद आ रहे हैं, जब मार की प्रेरणा से ऐसी ही अनेक परियाँ मेरा तप भंग करने को मेरे निकट पधारी थीं।

आनंद : भगवान पर उनका क्या असर होता भला! यह मार का सरासर अविचार था।

[तब तक अंबपाली निकट आ जाती है – आसन के नीचे आकर, सिर झुका, भगवान का अभिवादन करती है – भगवान बुद्ध हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं – अंबपाली घुटनों पर झुकी हाथ जोड़कर कहती है –]

अंबपाली : भगवान, मैं कृतार्थ हो गई। सारी वैशाली में भगवान को मेरी ही आम्र-वाटिका पसंद आई! आज मेरे सौभाग्य का क्या कहना!

आनंद : आर्ये, तथागत के धर्ममार्ग में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। उनके लिए सभी प्राणी समान हैं। रहा सौभाग्य! सो कोई किसी को देता नहीं, वह उसकी अपनी चीज़ होती है –

[भगवान बुद्ध सिर्फ़ मुसकराते रहते हैं।]

अंबपाली : भिक्षुवर, अंबपाली सौभाग्य पाती नहीं, लेती भी है। एक सौभाग्य अनाया।स मिला, तो दूसरा वह स्वयं लेने आई है।

आनंद : *(कुछ सावधान-सा होकर)* आपका मतलब?

अंबपाली : मैं भगवान को अपने घर भोजन करने को आमंत्रित करने आई हूँ।

आनंद : भिक्षु के लिए भोजन के आमंत्रण की आवश्यकता नहीं होती, आर्ये। वह अनिमंत्रित ही जाता है और जहाँ जो प्राप्त होता है, वहीं वह भोजन कर लेता है। यही नियम है।

अंबपाली : *(साधिकार)* नियम है, होगा। किंतु अंबपाली को विश्वास है, वह भगवान से जो वरदान माँगेगी, उसमें उसे 'नाहीं' नहीं मिल सकती।

[आनंद भगवान की ओर देखते हैं – भगवान मौन रह जाते हैं – लेकिन इस मौन से स्वीकृति स्पष्ट झलक रही है – अंबपाली का मस्तक कृतज्ञता से झुक जाता है – हाथ बढ़ाकर बुद्ध का चरण छूती है – चलने के लिए खड़ी होती हुई वह आनंद से कहती है –]

भिक्षुवर, अंबपाली अपनी ज़िंदगी में पहली बार, भगवान के लिए अपने हाथों रसोई बनाने जा रही है। क्या वह आशा कर सकती है; भगवान के साथ आप भी पधारेंगे?

आनंद : छाया शरीर को कैसे छोड़ सकती है, आर्ये!

[इधर बगीचे के फाटक पर कोलाहल बढ़ता जाता है – अंबपाली भगवान का अभिवादन कर चलती है – उसी समय फाटक की ओर से तुमुल जयनाद सुनाई पड़ता है, जो वृज्जिसंघ के महामात्य के आगमन का सूचक है – अंबपाली फिर अभिवादन कर वहाँ से चल देती है – वैशाली का एक नागरिक आता और आनंद के हाथों में वृज्जिसंघ के महामात्य का, आगमन के लिए आज्ञा चाहनेवाला, पुर्ज़ा रख देता है – भगवान बुद्ध का रुख देख स्वयं आनंद उनकी अगवानी के लिए जाते हैं –

महामात्य चेतक के नेतृत्व में वैशाली के नागरिकों और नागरिकाओं का झुंड आ रहा है – उन्हें देखकर भगवान बुद्ध भिक्षुओं को संबोधित करते हैं –]

भगवान बुद्ध : भिक्षुओ, आपमें से जिन भिक्षुओं ने कभी देवताओं की परिषद् नहीं देखी है, वे वृज्जियों की इस परिषद् को ध्यान से देखें, उनका निरीक्षण करें और इसी से देवताओं की परिषद् का अनुमान करें!

[उन्हें निकट आया देख भगवान बुद्ध उनके सम्मान में अपने आसन से खड़े हो जाते हैं – महामात्य चेतक और सभी नागरिक तथा नागरिकाएँ भगवान बुद्ध का अभिवादन करते हैं – फिर आनंद सबको सम्मान के साथ यथायोग्य आसन पर बिठलाते हैं – महामात्य भगवान बुद्ध से कहते हैं –]

महामात्य चेतक : भगवान, आपके शुभागमन से हमारा वृज्जिसंघ कृत-कृत्य हुआ, वैशाली पवित्र हुई। भगवान ने इस बार अनिमंत्रित ही पधारकर हमारे सौभाग्य को कितना बढ़ा दिया है!

भगवान बुद्ध : पहली बार मैं आपके निमंत्रण पर आया था। लेकिन एक बार यहाँ आने पर ही वैशाली मेरी अपनी नगरी हो चुकी; फिर, निमंत्रण की क्या ज़रूरत रही महामात्य? हाँ, इस बार मैं ही आपके नागरिकों को निमंत्रण देने आया हूँ!

महामात्य चेतक : भगवान का आमंत्रण! हमें लज्जित न करें, भगवान। हम आपके आमंत्रण के नहीं, आज्ञा के पात्र हैं! आपकी जो आज्ञा होगी, हम उसे सिर-आँखों पर लेंगे, भगवान!

भगवान बुद्ध : *(मुसकराते हुए)* नहीं-नहीं आमंत्रण ही। मैं आप लोगों को विजय का आमंत्रण देने आया हूँ।

महामात्य चेतक : *(आश्चर्य से)* आमंत्रण और विजय का? भगवान, हमारा संघ न किसी की विजय बर्दाश्त कर सकता है और न किसी की स्वतंत्रता पर हाथ उठाता है। विजय तो तुच्छ राजतंत्रवालों की घृणित आकांक्षा है। भगवान हमारी जाँच न करें; हमें धर्म का मार्ग बताएँ।

भगवान बुद्ध : *(गंभीर होकर)* जिस धर्म में विजय की आकांक्षा न हो, उसे धर्म मत समझो, वृज्जियो! धर्म के मानी ही हैं – अपने पर विजय प्राप्त करना, फिर संसार पर विजय प्राप्त करना।

महामात्य चेतक : अपने पर विजय तो समझा, किंतु संसार पर?

भगवान बुद्ध : हाँ, संसार पर। वह विजय क्या हुई, जो संसार पर न छाई? छोटे मन और संकुचित आकांक्षा को छोड़ो। अपना उद्देश्य महान करो, अपनी

दृष्टि ऊँची करो। फिर विजय-अभियान को निकलो — सारा संसार तुम्हारे पैरों पर आप आ झुकेगा!

महामात्य चेतक : यह विजय-अभियान हमारी समझ में नहीं आता, भगवान!

भगवान बुद्ध : समझ में नहीं आता? *(कुछ देर ध्यानस्थ होकर)* अभी शायद वक्त नहीं आया है, महामात्य! अभी तो विजय के मानी है हत्या, हिंसा, रक्तस्नान, अग्निकांड, क्रंदन, आर्तनाद। यह विजय है, या विनाश? मैं जिस विजय की कल्पना करता हूँ और जिसके अभियान के लिए सबको आमंत्रित कर रहा हूँ, वही यथार्थ विजय होगी, वृज्जियो! इस विजय-अभियान के सैनिकों के हाथों में फौलाद की तलवार या गैंडे की खाल की ढाल के बदले एक हाथ में तालपत्र पर लिखी कुछ पोथियाँ होंगी और दूसरे में भिक्षा-पात्र होगा। उनके शरीर पर ज़िरहबख्तर न होकर *(अपने लबादे की ओर इशारा करके)* टुकड़े-टुकड़े चीथड़ों से बने, मिट्टी के रंग में रँगे, पीले वस्त्र होंगे और उनके मुँह से दानवी जयनाद नहीं, विश्व कल्याणकारी श्रुति-मधुर पूत मंत्र निकलकर दिग्दिगंत को मुखरित करेंगे। मैं कल्पना की आँखों से देख रहा हूँ, हमारे ये सैनिक हिमाचल के दुर्दम शिखरों को रौंदते, समुद्र की उत्ताल तरंगों को कुचलते, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, चारों ओर फैल रहे हैं और ये जहाँ जाते हैं, उनका मुकाबला न होकर स्वागत हो रहा है और वे देश पर देश विजय करते जा रहे हैं!

[कहते-कहते बिलकुल ध्यानमग्न हो जाते हैं और उनके चेहरे से आभा निकलने लगती है।]

महामात्य चेतक : *(दीप्ति के आगे सिर झुकाते)* भगवान की कल्पना सत्य होगी, क्या इसमें किसी को कोई संदेह हो सकता है? और इस विजय में हम वृज्जि

भी अपना योग्य हिस्सा लेंगे – हमारी वैशाली अपना अर्घ्य अर्पित करने में पीछे नहीं रहेगी, भगवान इस पर विश्वास रखें।

भगवान बुद्ध : वृज्जिसंघ तथागत को कितना प्रिय है, क्या वह सिर्फ़ शब्दों में कहा जा सकता है? तथागत के धर्मसंघ के विधान का आधार तो संघराज्य से ही लिया गया है। वृज्जि इस धर्म-विजय में योग्य हिस्सा लेंगे और वैशाली? मैं देख रहा हूँ, जब तथागत के धर्ममार्ग पर कोई विवाद उठ खड़ा होगा, उसके निबटारे का सौभाग्य वैशाली को ही प्राप्त होगा; और जब युगों के थपेड़ों ने इस महान नगरी के धुर्रे उड़ा दिए होंगे, तब भी इसकी मिट्टी के दर्शन के लिए जंबूद्वीप के कोने-कोने से लोग आएँगे!

[वैशाली की इस महिमा को भगवान बुद्ध के मुँह से सुनकर सभी वृज्जि पुलकित हो जाते हैं। गद्गद कंठ से महामात्य चेतक कहते हैं–]

महामात्य चेतक : भगवान का आशीर्वाद हमारा सौभाग्य है। हम वृज्जि भगवान के चिर-अनुगृहीत हैं। हम इस आशीर्वाद योग्य पात्र सिद्ध हों, यही हमारी आकांक्षा है। *(अभिवादन करते हैं)* खैर, अब एक निवेदन है।

भगवान बुद्ध : बोलिए, महामात्य।

महामात्य चेतक : मैं संघ की ओर से भगवान को अतिथि-आवास में चलने और संघ का आतिथ्य स्वीकार करने का निमंत्रण दे रहा हूँ।

भगवान बुद्ध : संघ का निमंत्रण तो हमेशा ही स्वीकृत है। किंतु क्या संघ अपनी एक नागरिका के आमंत्रण का अपमान होने देगा?

महामात्य चेतक : नागरिका? आमंत्रण?

भगवान बुद्ध : अभी-अभी आर्या अंबपाली आई थीं और वह निमंत्रण की स्वीकृति भी ले चुकीं।

महामात्य चेतक : *(ज़रा मुसकराहट में)* ओहो, अंबा ने हमें हरा दिया।

भगवान बुद्ध : अंबपाली साधारण नारी नहीं है, महामात्य। वैशाली की कीर्ति में अंबा की कीर्ति चार चाँद लगा देगी, ऐसा मुझे स्पष्ट भास रहा है।

[सभी नागरिक भगवान के मुँह से अंबपाली की यह प्रशस्ति सुनकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं — एक-दूसरे का मुँह देखने लगते हैं — महामात्य चेतक भगवान बुद्ध का अभिवादन करके सभी नागरिकों के साथ प्रस्थान करते हैं।]

3

[अबंपाली के विलास-भवन का शृंगारकक्ष — उसकी परिचारिका चयनिका कमरे में आती है—उसकी आहट सुन वह उसकी ओर मुड़ती और पूछती है—]

अबंपाली : क्या है चुन्नी?

चयनिका : आपने अभी तक प्रसाधन नहीं किया?

अंबपाली : न किया, न करूँगी।

चयनिका : हाँ, भगवान बुद्ध के जाने से हम सबका चित्त आज खिन्न है।

अंबपाली : तेरा चित्त भी?

चयनिका : भला!

अंबपाली : क्यों खिन्न है, रे?

चयनिका : क्यों न खिन्न हो, आर्ये? इन दिनों कैसी धूमधाम रही यहाँ!

अंबपाली : तुझे भगवान के प्रवचन अच्छे लगे?

चयनिका : तो भला!

अंबपाली : तब तू बूढ़ी हो चली!

चयनिका : *(चौंककर)* मैं बूढ़ी?

अंबपाली : हाँ, हाँ, बूढ़ी।

चयनिका : छी, छी, यह क्या कहती हैं भद्रे? मैं बूढ़ी नहीं हूँ।

अंबपाली : चुन्नी, जब मन में शृंगार की जगह विराग ले ले, खेल-तमाशे के बदले भजन-ध्यान अच्छा लगे, भीड़ से घबराकर जब आदमी एकांत खोजे, रंग-बिरंगे पट की जगह जब सादा श्वेत वस्त्र भाए, तब जान लो, आदमी ने कफ़न की ओर पैर बढ़ा दिए।

चयनिका : कफ़न की ओर? मैं अभी मरना नहीं चाहती, आर्ये।

अंबपाली : मरना नहीं चाहती है, तो जीना सीख। जीना भी एक कला है, चयनिके! कुछ लोग ज़िंदा भी मरे हुए हैं, कुछ मरकर भी ज़िंदा रहेंगे।

चयनिका : कुछ मरकर भी ज़िंदा रहेंगे, जैसे भगवान बुद्‌ध। क्यों भद्रे?

अंबपाली : और अंबपाली भी!

चयनिका : *(आश्चर्य से आँखें फाड़ती अंबपाली की ओर देखती है।)*

अंबपाली : *(हँसती हुई)* हाँ, हाँ, अंबपाली भी। और दो अमरों में जब युद्‌ध होता है, वह कैसा भयानक दृश्य होता है, तूने देखा है रे?

चयनिका : *(घबराई हुई)* युद्‌ध?

अंबपाली : हाँ, जब अंबपाली और भगवान बुद्‌ध में युद्‌ध हुआ।

चयनिका : आपमें और भगवान में युद्‌ध?

अंबपाली : तू कैसी अंधी है रे, कुछ देखा ही नहीं? कई दिनों तक यह युद्‌ध चलता रहा है, कई दिनों तक दोनों ओर से अस्त्र चलते रहे हैं।

चयनिका : आप यह क्या कह रही हैं भद्रे? भगवान बुद्‌ध और अस्त्र?

अंबपाली : अगर भगवान बुद्‌ध के पास अस्त्र नहीं है, तो वे विजयी कैसे होते हैं? कैसे भरतखंड में उनका दिग्विजय का डंका बजता जा रहा है? और क्या बिना अस्त्र के ही अंबपाली ने वृज्जिसंघ पर विजय प्राप्त की है?

चयनिका : अच्छा, तो इस युद्ध में हुआ क्या?

अंबपाली : हुआ यही कि न भगवान मुझे पराजित कर सके, न मैं उन्हें पराजित कर सकी!

चयनिका : तो आप भगवान को पराजित करना चाहती थीं?

अंबपाली : ज़रूर। हर आदमी, जिसमें कुछ कस-बल होता है, दूसरे को पराजित करना चाहता है। जिसमें जय की भावना न हो, समझ, उसमें कुछ है ही नहीं।

चयनिका : देवि, आप विचित्र नारी हैं। *(वह काँप उठती है।)*

अंबपाली : भगवान ने भी यही कहा था।

चयनिका : भगवान ने?

अंबपाली : तूने अंबपाली को क्या समझा है रे! महान ही महान की महत्ता समझता है — अंबपाली को भगवान ने ही पहचाना! *(वह आत्मगौरव में फूल-सी उठती है।)*

चयनिका : मैं इन बातों को क्या समझूँ! खैर, देर हो रही है, आप प्रसाधन कर लें।

अंबपाली : प्रसाधन नहीं करूँगी, यह तुझे पहले ही कह दिया है न ।

चयनिका : तो प्रसाधन क्यों नहीं करेंगी?

अंबपाली : क्योंकि इन प्रसाधनों की व्यर्थता तो कम-से-कम मालूम ही हो गई! जो अस्त्र विजय न दिलाए, वह भाड़ में जाए। चयनिके, इन कुछ दिनों में प्रसाधन का एक भी साधन मैंने नहीं छोड़ा, लेकिन उफ़.. *(उसाँसें लेती है।)*

चयनिका : भद्रे!

अंबपाली : *(अचानक उसकी आवाज़ भर्रा जाती है, चेहरे पर विषाद की रेखाएँ खिंच आती हैं)* चयनिके, आह! तू मेरी अंतर्व्यथा का अनुभव कर पाती! अंबपाली ने सोच रखा था, उसके अस्त्र अमोघ हैं, वह सब पर

विजय प्राप्त कर सकती है। उसने अपने को दीपशिखा समझा था, जिस पर हर पुरुष को पतंग बनकर गिरना ही पड़ेगा। लेकिन, यह क्या हुआ? जब-जब वह उनके नज़दीक गई, उसने पाया, उनके ज्योतिर्मंडल के भीतर पहुँचते ही मानो उसकी शिखा लुप्त हो गई, वह ठंडी पड़ गई, देखते-देखते बरफ़ बन गई। फिर, उस ज्योति की गरमी से, उसने महसूस किया, बरफ़ बनी वह पिघल रही है, पानी-पानी हो रही है। चयनिके! जो कोई भी उनके नज़दीक जाएगा, वह उनमें अपने को, अपने 'आपा' को खोए बिना नहीं रह सकता।

चयनिका : आप सच कह रही हैं, आर्ये!

अंबपाली : लेकिन अंबपाली इतने सस्ते नहीं हार मान सकती थी। ज्यों ही गरमी का असर होते देखती, वह वहाँ से भाग आती।

चयनिका : तो पराजय नहीं, पलायन तो हुआ!

अंबपाली : हाँ, पलायन हुआ! अंबपाली को इसके लिए लज्जा भी है। लेकिन यह पलायन उसने पराजय के प्रतिकार के लिए स्वीकार किया है। विजय को ध्यान में रखकर जो मौके पर पीछे हट जाते हैं, उनका पलायन पलायन नहीं है चयनिके! अंबपाली तब तक चैन नहीं लेगी, जब तक वह भगवान बुद्ध पर विजय नहीं प्राप्त कर लेती।

चयनिका : भगवान बुद्ध पर विजय? जिसे मार नहीं हरा सका !

अंबपाली : मार नहीं हरा सका, न हरा सकता था। आँधी, तूफ़ान, अजगर, शेर — और, जब इनसे भयभीत विचलित न हों, तो अप्सराएँ, परियाँ — नहीं-नहीं, इन अस्त्रों से मार बुद्ध को नहीं हरा सकता था। ये उतने ही व्यर्थ हैं, जितने अंबपाली के पिछले प्रसाधन।

चयनिका : तब?

अंबपाली : तब अंबपाली को विश्वास है, वह उन अस्त्रों को खोज सकेगी, जिनसे वह भगवान बुद्ध को पराजित कर दे। मैंने भगवान से कह दिया है।

चयनिका : *(आश्चर्य की अधिकता में चिल्लाती-सी)* कह दिया है!

अंबपाली : हाँ, कह दिया है! सुनकर वह मुसकराए, बोले – राजनर्तकी, वह दिन तथागत के लिए धन्य होगा, जब एक नारी यह समझ ले कि उसने उन पर विजय प्राप्त कर ली। *(मुसकराती है।)*

4

[वैशाली का पार्श्वभाग – राजपथ से दूर फैला एक विस्तृत मैदान – मैदान के बीच एक मौलसिरी का सघन पेड़ – पेड़ के नीचे चबूतरा बना – चबूतरे पर पेड़ के तने से पीठ टेके अरुणध्वज वंशी बजा रहा है – वह बहुत दुबला हो चला है, काला पड़ गया है – उसके रूखे बेतरतीब बाल उड़ रहे हैं –

चबूतरे की दूसरी ओर मधूलिका बैठी तागे से कुछ बुन रही है – उसके सूखे, भर्राए चेहरे पर आँसुओं की सूखी रेखाएँ और दाग स्पष्ट हैं –

गरमी के दिन हैं, शाम का वक्त – एक युवती और दो नागरिक उस ओर से पगडंडी पकड़े गुजरते हैं – वंशी की आवाज़ से खिंचकर, धीरे-धीरे वे उस पेड़ के निकट पहुँचते हैं– अरुण इन लोगों की ओर से लापरवाह अपने में तल्लीन, वंशी बजाता जाता है – थोड़ी देर में उसकी वंशी रुक जाती है –]

एक नागरिक : क्यों भई, बंद क्यों कर दिया? थोड़ा और बजाओ। *(अरुण उन्हें घूर-घूरकर देखता रह जाता है –)*
थोड़ा और बजाओ, भाई!

दूसरा नागरिक : कैसी करुण रागिनी! मैंने ऐसी वंशी आज तक नहीं सुनी थी।

अरुणध्वज : यह आपकी चापलूसी है या दिल्लगी?

पहला नागरिक : वैशाली के नागरिक न चाटुकार होते हैं, न अशिष्ट।

दूसरा नागरिक : हमें अपनी कला-मर्मज्ञता पर नाज़ है, युवक। सचमुच तुम अपूर्व बजाते हो!

अरुणध्वज : अपूर्व!

दूसरा नागरिक : हाँ, हाँ, अपूर्व!!

अरुणध्वज : *(मुसकराता)* ओहो, मैं अपूर्व बजाता हूँ! बजाऊँ?

दोनों नागरिक : ज़रूर, ज़रूर!

[अरुण वंशी बजाने लगता है — युवती और दोनों नागरिक मुग्ध होकर वंशी सुनते जाते हैं —

वंशी की कोमल काकली को दबोचती-सी रथ की घर्र-घर्र आवाज़ सुनाई पड़ती है — सबका ध्यान सुदूर राजपथ पर जाता है — मीनकेतन-पताका को देखकर एक नागरिक कहता है — 'ओहो, देवी अंबपाली का रथ है' *— अंबपाली का नाम सुनते ही अरुण चौंककर उठ खड़ा होता और वंशी पटक उस ओर भागता है — मधूलिका उसके पीछे लगती है — युवती और दोनों नागरिक वहाँ से आश्चर्यचकित हो चल देते हैं —*

थोड़ी देर में अरुण को पकड़े मधूलिका वहाँ आती है — दोनों चबूतरे पर बैठ जाते हैं।]

मधूलिका : अब वैशाली छोड़ो, घर चलो।

[अरुण कुछ नहीं बोलता — कातर दृष्टि से मधूलिका का मुँह देखता रहता है।]

मैंने क्या कहा, सुना? घर चलो, वैशाली छोड़ो।

अरुणध्वज : *(भर्राई आवाज़ में)* 'वैशाली छोड़ो' 'घर चलो' — हमारा घर कहाँ है, मधु?

मधूलिका : *(आँचल से आँसू पोंछती)* नहीं-नहीं, अब वैशाली छोड़ना होगा।

अरुणध्वज : 'वैशाली छोड़ना होगा!' *(कुछ याद करता-सा)* क्यों मधु, क्या यह वैशाली है?

मधूलिका : तो क्या यह आनंदग्राम है?

अरुणध्वज : *(उसकी आँखें चमक उठती है)* आनंदग्राम! हमारा आनंदग्राम! वह वेगवती का कलकल, वह आम्रवाटिका में पंछियों का कलरव! हाँ, हाँ, चल, रे मधु, चल। आम की डाल में झूला डालेंगे, खूब झूलेंगे — मैं झूलूँगा, तू झूलेगी, अंबा झूलेगी। *(अपने ही मुँह से अचानक निकले 'अंबा' शब्द से विक्षिप्त-सा होकर)* अंबा! अंबा! अंबा किधर गई, मधु? उफ़! *(झटपट खड़ा हो जाता और चारों ओर भौंचक देखता है।)*

मधूलिका : *(रोती हुई)* तुम होश नहीं करोगे?

अरुणध्वज : होश! क्या मैं होश में नहीं हूँ, मधु? सच? मैं होश में नहीं हूँ?

मधूलिका : मैं अब ज़हर खाके रहूँगी!

अरुणध्वज : *(आँखें फाड़ता-सा)* ज़हर खा लेगी?

मधूलिका : *(रुखाई से)* हाँ, ज़हर खा लूँगी, मर जाऊँगी, झंझट खत्म! मुझसे यह सब नहीं देखा जाता।

अरुणध्वज : *(कुछ सँभलता-सा करुण भाव से)* ज़हर खा लेगी, मर जाएगी? तू मर जाएगी, तो मेरा क्या होगा, मधु? मुझे कौन देखेगा? उफ़ मैं होश में नहीं रहता! तू मत मर मधु! तू ज़हर मत खा मेरी मधु...

मधूलिका : दूसरा चारा क्या है, तुम कुछ सुनते ही नहीं?

अरुणध्वज : सुनता नहीं हूँ, यह मत कह मधु। देखा नहीं, अभी किस तरह रथ का घर्र-घर्र सुन लिया और सुन लिया उस नागरिक का कहना कि देवी अंबा...

मधूलिका : और अंबपाली का नाम सुनते ही दौड़ पड़े पागल की तरह। उन लोगों ने क्या समझा होगा भला?

अरुणध्वज : क्या समझा होगा रे?

मधूलिका : समझा होगा कि हम लोगों का अंबपाली से कुछ-न-कुछ सरोकार ज़रूर है। ज़रूर कोई रहस्य की बात है!

अरुणध्वज : *(कातर भाव से)* तो क्या अंबपाली से हमारा कोई सरोकार नहीं है?

मधूलिका : *(दृढ़ता से)* कभी था, अब नहीं है!

अरुणध्वज : *(उत्तेजित होकर)* नहीं है! सरोकार नहीं है! अंबपाली से सरोकार नहीं है! अंबपाली से सरोकार नहीं है! यह तू क्या कह रही है, मधु? अंबपाली से सरोकार नहीं – उफ़, अंबे...

[वह पागल-सा चिल्लाता है – मधूलिका उसके मुँह पर हाथ रख देती है – मुँह पर हाथ रखे जाते ही वह चिल्लाना तो बंद कर देता है, लेकिन उसकी आँखों से अजस्र अश्रुपात होने लगता है – मधूलिका की आँखों से भी आँसू झरने लगते हैं – फिर मधूलिका कहती है –]

मधूलिका : यह क्या कर रहे हो, अरुण?

अरुणध्वज : यह क्या कर रहा हूँ, मधु! आह! मैं क्या कर दिया करता हूँ मधु? मधु, यह मुझे क्या हो जाता है, रे। ओह!

मधूलिका : प्रेम के मानी अमर्यादा नहीं है अरुण! कृष्ण और राधा को देखो। गोकुल और मथुरा में कितनी दूरी थी? एक योजन से भी कम! क्या राधा वहाँ नहीं जा सकती थी? लेकिन, वह नहीं गई! अपनी ओर से एक दूत भी नहीं भेजा! क्यों?

अरुणध्वज : क्यों?

मधूलिका : क्योंकि वह जानती थी कि कृष्ण की हैसियत बदल गई है। वह जिस स्थान पर बैठे हैं, उस स्थान के उपयुक्त एक गोपी का प्रेम नहीं। राधा ने प्रेम नहीं छोड़ा, तो मर्यादा भी नहीं छोड़ी। रोती रही, तड़पती रही, बिसूर-बिसूरकर जवानी गँवा दी, आँसुओं की बाढ़ में ज़िंदगी बहा दी;

लेकिन कृष्ण के पास एक पाती नहीं भेजी। हाँ, जब कृष्ण ने उद्‌धव को भेजा, तो उनका सखा जानकर, जो कुछ कहना था, उसी से कहा। मर्यादा इसको कहते हैं – प्रेम की महिमा यह है। और तुम? तुम तो पागल बने बैठे हो! दौड़कर यहाँ पहुँचे और अब यहाँ से खुराफ़ातें!

अरुणध्वज : *(संजीदा होकर)* खुराफ़ातें – हाँ, हाँ मधु, मैं खुराफ़ातें करता रहता हूँ – उफ़!

मधूलिका : तुम्हीं सोचो न, यह खुराफ़ात नहीं तो क्या है? यहाँ आए; अच्छा। जब-तब उसकी झलक देख लिया करते हो, यह भी सही! लेकिन, यों दौड़ पड़ना, चिल्ला उठना – क्या अंबा या तुम्हारे किसी के लिए शोभन है? अब अंबा राजनर्तकी है, उसकी एक मर्यादा है। उस मर्यादा की रक्षा करना क्या तुम्हारा कर्तव्य नहीं?

अरुणध्वज : मधु, मधु!

मधूलिका : मधु, मधु क्या? तुम ठीक से रहो। अपने होश पर काबू करो और अपनी सारी वेदना, सारी व्याकुलता को इसी वंशी की तान में घोल दो। वेदना जब संगीत बन जाए, व्यथा जब रागिनी का रूप धारण करे, प्रेम की सार्थकता तब सिद्‌ध होती है, अरुण!

अरुणध्वज : 'वेदना जब संगीत बन जाए, व्यथा जब रागिणी का रूप धारण करे, प्रेम की सार्थकता तब सिद्‌ध होती है!' ठीक, ठीक, मैं न अब चिल्लाऊँगा, न दौड़ूँगा, सिर्फ़ वंशी बजाऊँगा! सिर्फ़ वंशी बजाऊँगा! लेकिन, तब तू ज़हर नहीं खाएगी न मधु! *(मधूलिका की आँखों से आँसू गिरते देख)* तू फिर रो रही है?

मधूलिका : हाँ, रो रही हूँ। *(आँसू पोंछते)* मर्द जब गम में होता है, वंशी बजाता है; नारी जब गम में होती है, आँसू बहाती है।

अरुणध्वज : नारी जब गम में होती है, आँसू बहाती है। मधु, क्या अंबा भी रोती होगी?

मधूलिका : उसमें जो नारी है वह ज़रूर रोती होगी, ज़ार-ज़ार आँसू बहाती होगी। किंतु, वह बेचारी तो राजनर्तकी की मर्यादा में बँधी है न? उसका दिल भले ही रोए, उसका हृदय भले ही हाहाकार करे, किंतु उसे अपने चेहरे पर हँसी ही रखनी है, अपने मुँह से फूल ही बरसाने हैं। हम-तुम तो, अपनी पीड़ा को रो-गाकर कम कर लेते हैं, लेकिन, सोचो तो उसकी हालत – भीतर रोना, बाहर हँसना!

अरुणध्वज : भीतर रोना, बाहर हँसना? सचमुच यह अजीब बात है मधु!

मधूलिका : अजीब ही नहीं, अलौकिक! इसे सिर्फ़ अंबा – ऐसी असाधारण नारियाँ ही निभा सकती हैं! *(करुणा-भरी मुसकान के साथ)* कैसी अद्‌भुत घटना! एक ही गम के तीन रूप – तुम बजाओ, मैं रोऊँ और अंबा हँसे!

तीसरा अंक

1

[राजगृह — चारों ओर पर्वतश्रेणियाँ — पर्वतश्रेणियों के बीच बसा राजगृह का विशाल नगर —

नगर के बीच मगध का राजप्रासाद — भव्य, दिव्य, विस्तृत विशाल — प्रासाद की आखिरी मंज़िल पर अजातशत्रु का एकांत कक्ष — जब से वह बौद्ध हुआ है, इसी हिस्से में वह राजकाज के बाद रहता है — यहाँ से गृध्रकूट-शिखर स्पष्ट दिखाई पड़ता है, जहाँ भगवान बुद्ध राजगृह आने पर ठहरते हैं —

कक्ष के सामने की छत पर वह व्याकुल होकर टहल रहा है —

बार-बार उसकी नज़र गृध्रकूट की ओर जाती है — फिर गृध्रकूट से हटते ही उसकी नज़र उसके हाथ में रखी, तलहथी के आकार की हाथीदाँत पर बनी तसवीर पर जाती है — तसवीर देखते ही साँस ज़ोर से चलने लगती है — पैर तेज़ी से उठने लगते —

उसका उपमंत्री, सुनीध, उस समय नीचे से छत पर आता है — यह अजातशत्रु का उपमंत्री ही नहीं, उसका प्रिय सखा भी है — दोनों लँगोटिया यार, आपस में कोई दुराव नहीं — सुनीध कुछ देर तक अजातशत्रु की यह भावभंगिमा देखता है, फिर बोलता है —]

सुनीध : यह क्या हो रहा है, सम्राट! एक बार गृध्रकूट को देखना, फिर तलहथी की ओर टकटकी लगाना। किसी ज्योतिषी ने क्या फिर कोई नई भाग्यरेखा बताई है?

अजातशत्रु : *(मुड़कर)* ओहो, सुनीध! भले आए। नई भाग्यरेखा नहीं, यह देखो! *(तसवीर दिखाता है।)*

सुनीध : यह तो अंबपाली है!

अजातशत्रु : तुमने कैसे पहचाना?

सुनीध : अगर इतनी जानकारी न रखूँ, तो सम्राट के मंत्रित्व की ज़िम्मेवारी कैसे निभा सकूँगा! जिसने हमारे पुराने शत्रु लिच्छवियों और विदेहों पर जादू डाल रखा है, जिसे पाकर सारा वृज्जिसंघ अपनी वैशाली को अलका की प्रतिद्वंद्विनि मानने लगा है, उसे मैं न पहचानूँ?

अजातशत्रु : अपूर्व सुंदरी है यह, सुनीध! वृज्जियों को इस पर घमंड करने का पूरा हक है।

सुनीध : गंगा के उस पार की भूमि में ही कुछ ऐसी खूबी मालूम पड़ती है सम्राट! सीता, उर्मिला, अहल्या, अंबपाली – एक-से-एक रूप-गुणवती नारियाँ वहाँ पैदा होती आई हैं! स्वयं सम्राट अपनी मातृश्री की याद करें – सम्राज्ञी देवी चेल्लना का वह दिव्य रूप, अलौकिक सौंदर्य, अपूर्व तेज...
[अपनी माँ की इस चर्चा से ही अजातशत्रु व्याकुल हो जाता है – यहाँ इस की चर्चा की आवश्यकता नहीं कि उसने अपने पिता को कैद कर लिया था और उसकी माँ, बेटे की इस क्रूरता पर तड़प-तड़पकर मर गई थी –]

अजातशत्रु : *(बीच ही में रोककर)* बस, बस, तुम फिर भूल कर रहे हो, सुनीध! मैंने बार-बार मना किया, माता-पिता की याद मुझे मत दिलाओ। मेरी कोई माता नहीं, कोई पिता नहीं। मैं आदमी नहीं, उल्का हूँ – आप-से-आप आसमान से गिरा हूँ – खुद जल रहा हूँ, दूसरों को जलाता हूँ, जलाऊँगा! *(दीर्घ उच्छ्वास लेकर घूमने लगता है।)*

सुनीध : *(उसके नज़दीक जाकर)* क्षमा कीजिए, सम्राट!

अजातशत्रु : सुनीध, मैं तुम्हारी योग्यता का कायल हूँ, तुम्हारे जैसे सखा पर मुझे नाज़ है। लेकिन याद रखो, इस गलती का दुहराना मैं नहीं बर्दाश्त कर सकता। समझे?

सुनीध : सम्राट ! *(सिर झुकाता है।)*

अजातशत्रु : *(शांत होकर)* अच्छा, तुमसे एक मर्म की बात कहनी है, सुनीध!

सुनीध : कहने की ज़रूरत नहीं, सम्राट। क्या मगधपति की मुखाकृति की रेखाएँ ही पुकार-पुकारकर उनके मर्म के अंतद्र्वंद्व की घोषणा नहीं कर रहीं? लेकिन —

अजातशत्रु : लेकिन क्या?

सुनीध : धृष्टता के लिए फिर क्षमा चाहते हुए निवेदन यह है सम्राट कि मगधराज के लिए क्या यह शोभनीय है कि उनका दिल ऐसा कच्चा महल हो जो उनके शत्रुओं की एक सुंदरी के रूप-जादू से घरौंदा-सा भहरा पड़े।

अजातशत्रु : *(मुसकराते हुए)* घरौंदा-सा भहरा पड़े! तुम्हें सावधान करने का अधिकार है, सुनीध! *(अचानक गंभीर होकर)* लेकिन, तुमसे छिपाना क्या है? आज तक मैं अपने को पहचान नहीं सका। एक अजीब उच्छृंखलता मेरे मन में घर किए हुए है जो रह-रहकर यों उभड़ती है कि...*(अपने दाहिने हाथ से बाएँ पंजे को ज़ोर से मरोड़ता है।)*

सुनीध : बड़ों में मन की यह चंचलता क्या वांछनीय है, सम्राट?

अजातशत्रु : चंचलता? इतना छोटा-सा नाम इसे मत दो, मेरे प्रिय सखा! जिसके वश होकर मैंने पिता से विद्रोह किया, उन्हें बंदी बनाया, पितृहंता कहलाया, तड़प-तड़प माताजी मरीं, हज़ारों नर-नारियों की निर्मम हत्या कराई, और आज भी नहीं कह सकता कि मुझसे कब, कहाँ, क्या हो जाएगा— उसे तुम सिर्फ़ चंचलता नहीं कह सकते।

[गृध्रकूट की ओर टकटकी लगाकर देखता, कुछ मन-ही-मन पढ़ता और सिर नवाता है।]

सुनीध : ठीक, सम्राट, ठीक। ऐसे मौकों पर भगवान बुद्ध...

अजातशत्रु : *(बीच ही में रोककर)* भगवान बुद्ध? सुनीध, सोचा था, भगवान बुद्ध की शरण में आने पर इस उच्छृंखलता पर विजय प्राप्त करूँगा। चेष्टाएँ

कीं और सफलता भी मिल रही थी। अपने पर बहुत कुछ काबू कर लिया था। लेकिन इस छोटी-सी तसवीर ने सारा किया-कराया बंटाढार कर दिया!

सुनीथ : इसका प्रतिकार सहज है। मन को कड़ा कीजिए। इस तसवीर को फेंक दीजिए, तोड़ दीजिए, जला दीजिए। आपसे नहीं होता, तो लाइए इधर। *(हाथ बढ़ाता है।)*

अजातशत्रु : *(मुसकराता हुआ)* कैसा सहज प्रतिकार! फेंक दीजिए, तोड़ दीजिए, जला दीजिए! सुनीध! इधर एक सप्ताह से इसी उद्देश्य से इस तसवीर को निकालता हूँ। मन कड़ा करने के लिए राजवस्त्र को त्याग यह पीला लबादा ओढ़ता हूँ। लेकिन ज्यों ही तसवीर हाथ में लेता हूँ, हाथ काँप उठता है। हाथ काँपता है, ज़ोर से मुट्ठी बाँधता हूँ। हृदय डगमगाता है, गृध्रकूट की ओर देखता हूँ, और इन सारे प्रयत्नों के बावजूद इस आठवें दिन भी तसवीर जहाँ-की-तहाँ है और न जाने मेरे पैर कहाँ-से-कहाँ खिसककर चले गए।

सुनीध : यह कोई अच्छी बात नहीं है, सम्राट!

अजातशत्रु : अच्छी बात नहीं है, यह क्या समझाओगे तो समझूँगा! लेकिन अब तो मगध की गंगा गोमुखी का बाँध तोड़कर निकल चुकी। अब कोई ऐरावत उसे रोक नहीं सकता, कोई जह्नु उसे सोख नहीं सकता। जिस तरह अनेक गलतियाँ हो चुकीं, एक गलती और करूँगा।

सुनीध : लेकिन, सोचिए सम्राट, जो घटनाएँ दुर्भाग्यवश घट चुकीं, उसके बाद कोई वृज्जिनारी अब मगध की पटरानी बनना भी स्वीकार कर सकती है?

अजातशत्रु : *(गुस्से से उसका चेहरा लाल हो जाता है — सिर हिलने लगता है)* सुनीध, सुनीध तुम बहक जाया करते हो। तुम मेरे सखा हो...किंतु तुम्हें

याद रखना चाहिए कि सम्राट हमेशा ही सम्राट है। और मगध-सम्राट की यह आज्ञा अचल-अटल है कि वैशाली पर हमें विजय प्राप्त करनी ही है – अंबपाली को राजगृह लाना ही है।

सुनीथ : सम्राट की आज्ञा हमारे सिर पर है *(वह सिर झुकाकर अपनी भक्ति प्रकट करता है)* वैशाली पर तो हमें विजय प्राप्त करनी ही है। वृज्जियों ने इधर अजीब धमाचौकड़ी मचा रखी है। अपने संघबल पर उन्हें इतना घमंड हो गया है कि उन्होंने मस्तिष्क का संतुलन तक खो दिया है। गंगा पर चलने वाले हमारे बजड़ों से वे कर वसूलते हैं, उन्हें लूटते हैं। गंगा-पार कर वे हमारे गाँवों और छावनियों पर छापा मारते हैं। उन्हें रोकने के लिए हमने जो पाटलिग्राम बसाया है, उसे ध्वस्त-पस्त किए रहते हैं। वैशाली पर विजय प्राप्त करना तो अनिवार्य है, सम्राट!

अजातशत्रु : मैंने आज महामंत्री वस्सकार को भगवान बुद्ध के पास इसी काम में सलाह लेने को भेजा है – मैं उनकी प्रतीक्षा में ही हूँ। *(गृध्रकूट की ओर नज़र उठाता है।)*

सुनीथ : महामंत्री तो इसके लिए कब से तैयारियाँ कर रहे हैं। गंगा किनारे की छावनियों को दुरुस्त किया है, युद्ध-पोतों का पुनः संगठन किया है, नए अस्त्र-शस्त्र बनवाए हैं, सेना का भी नवीन संगठन किया है, यहाँ तक कि राजधानी के परकोटे की मरम्मत तक को नहीं छोड़ा है। साम्राज्य का सौभाग्य है कि उसे वस्सकार-से महामंत्री मिले हैं।

अजातशत्रु : तुम्हारा कहना बिलकुल सही है।

[उसी समय मगध का महामंत्री वस्सकार पहुँचता है – एकदम बूढ़ा – सभी बाल सन-से सफ़ेद – चेहरे पर झुर्रियों के साथ कूटनीतिज्ञता की छाप – आगे के दो दाँत टूटे, जिससे आवाज़ में विकृति – बुढ़ापे के कारण उसका सिर रह-रहकर हिल उठता है – अजातशत्रु उससे पूछता है –]

क्यों महामंत्रीजी, भगवान ने क्या कहा?

वस्सकार : मैंने आपसे कहा था न, भगवान बुद्ध को वृज्जियों से स्वाभाविक अनुराग है। और, मैं कहूँ, उनके लिए उनमें पक्षपात भी है!

अजातशत्रु : महामंत्री!

वस्सकार : मगध का महामंत्री अपनी ज़िम्मेवारी समझते हुए बोलता है, सम्राट! ज्यों ही मैं उनके पास गया और उनसे सम्राट का संदेश कहा, वह आनंद से पूछने लगे –

'क्यों आनंद, क्या वृज्जियों की परिषद् बार-बार बैठती और उसमें भरपूर उपस्थिति होती है?

'क्या वृज्जि इकट्ठे जुटते, इकट्ठे उठते और इकट्ठे अपने राष्ट्रीय कर्तव्यों को पूरा करते हैं?

'क्या वृज्जि बाकायदा कानून बनाए बिना कोई आज्ञा जारी नहीं करते और न बने हुए नियमों का उच्छेद करते हैं?

'क्या वृज्जि वृद्ध-बुज़ुर्गों का सम्मान करते और उनकी सुनने लायक बातों को सुनते और मानते हैं?

'क्या वृज्जि अपनी कुमारियों और नारियों पर ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं करते और उनकी कदर और इज़्जत करते हैं?

'क्या वृज्जि अपने चैत्यों, मंदिरों और समाधियों की रक्षा करते हैं?

'क्या वृज्जि अर्हतों और तपस्वियों का आदर-सत्कार करते हैं?'

और, इनका उत्तर आनंद से 'हाँ' में सुनकर वह तमककर बोल उठे, 'तो आनंद, वृज्जियों की उन्नति ही होगी, उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकेगा।'

अजातशत्रु : *(उसकी भवों पर बल पड़ जाते हैं, वह तमतमाकर बोलता है)* ऐसा? तो महामंत्री,.आपने भगवान से क्यों नहीं कह दिया कि ये वृज्जि चाहे जितने समृद्ध हों, चाहे इनका जितना प्रभाव हो, मैं इन्हें उखाड़ डालूँगा,

नष्ट कर दूँगा! जब मगध की गंगा गोमुखी से चल चुकी, तो बीच में कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती! *(क्रोध में वह घूमने लगता है।)*

वस्सकार : मगध के सम्राट के अनुकूल ही यह वचन है। लेकिन, क्या मगध के महामंत्री का काम साधु-तपस्वियों से शास्त्रार्थ करना ही रह गया है? भगवान को कहने दीजिए, मैंने वैशाली-विजय की सारी तैयारियाँ कर रखी हैं, और उनके कथन से जिस सूत्र का पता चला उसका भी निराकरण कर लेना है।

अजातशत्रु : कौन-सा सूत्र वह है?

वस्सकार : भगवान बुद्ध का कहने का तात्पर्य सिर्फ़ यह था कि वृज्जियों में कुछ ऐसी एकता और निष्ठा है कि वे जीते नहीं जा सकते। अब मैं उस एकता को तोड़ूँगा, निष्ठा को भ्रष्ट करूँगा। मैंने उसके लिए राह भी सोच ली है!

अजातशत्रु : कौन-सी राह है वह, महामंत्रीजी!

वस्सकार : बहुत ही सीधी-सी राह। मैं कल दरबार में वृज्जियों का प्रसंग उठाऊँगा और उनकी बड़ी तारीफ़ करूँगा। आप इसके लिए मुझे खूब फटकार बताएँगे। मैं इसके बावजूद, दो दिन बाद, वृज्जियों के पास गुप्तरूप से प्रेमोपहार भेजूँगा। आप उस दूत को पकड़वा लेंगे। पकड़कर मुझे राजद्रोही घोषित कीजिए, अपमानित कीजिए, मेरा सिर गंजा कराइए और मुझे मगध से निष्कासन की सज़ा दीजिए – बस, आपको सिर्फ़ इतना ही करना है, बाकी मैं कर लूँगा!

अजातशत्रु : *(चकित होकर)* सिर गंजा कराना! महामंत्री, नहीं नहीं, मुझसे यह नहीं होगा।

वस्सकार : *(हँसकर)* गंजे सिर का प्रभाव देश पर कितना बढ़ रहा है, शायद सम्राट ने इसी पर ध्यान नहीं दिया है। और मुझे इस काम में जल्दी करनी है।

भगवान बुद्ध के वैशाली जाने के पहले ही मुझे अपना जादू जगाना है— कौन जाने, अपनी स्वाभाविक अनुरक्ति के कारण भगवान उन्हें हमारी मंशा की खबर न कर दें?

अजातशत्रु : महामंत्रीजी, यह क्या कह रहे हैं आप?

वस्सकार : सम्राट, भावुकता और राजधर्म साथ-साथ नहीं चला करते।

2

[वैशाली की अभिषेक-मंगल-पुष्करिणी — इसके पवित्र जल से वृज्जियों का राज्याभिषेक होता, अतः दूसरे के लिए इसके स्पर्श तक की सख्त मुमानियत — चारों ओर सख्त पहरे पड़े हैं — इसके जल में विहार करनेवाले पंछी बाहर न जाएँ इसके लिए पानी के ऊपर लोहे का जल में जाल लगा —

इस पुष्करिणी की शोभा का क्या कहना! सरोवर में श्वेत, नील, लाल कमल खिले हुए— कमलों पर भौंरों का गुंजार — जहाँ-तहाँ जलपंछी किलोल कर रहे — जहाँ-तहाँ भावुक युवक-युवतियों का नौकाविहार —

एक चबूतरे पर महामंत्री वस्सकार अकेला बैठा है — भिक्षुकों-सा है वेश उसका — सिर के बाल मुँडे, पीला लबादा तन पर, हाथ में एक सुमरनी — उसका ध्यान न सरोवर पर है, न अस्ताचलगामी सूरज पर, न बादलों पर — वह टहलनेवाले नागरिकों में से एक-एक को घूरता है — जैसे उनके चेहरों को पढ़ने की कोशिश कर रहा है — बीच-बीच में सुमरनी तेज़ी से घुमाता वह बुदबुदा उठता है —

एक नागरिक को अकेला, सिर नीचा किए, टहलता देखकर वह उसके निकट जाता है — उस नागरिक की कमर से लंबी तलवार लटक रही है, पीठ पर ढाल है — उसके चेहरे से अभिमान और औद्धत्य टपक पड़ता है —]

वस्सकार : क्यों, आर्य अश्वसेन, आप उदास क्यों दीखते हैं?

अश्वसेन : ओहो, मगध के महामंत्री, नमस्ते।

वस्सकार : नमस्ते आर्य! आपके चेहरे पर यह उदासी क्यों है?

अश्वसेन : *(आश्चर्य से)* उदासी? उदासी कहाँ है? यों ही कुछ सोच रहा था। कहिए, आपको वैशाली कैसी पसंद आ रही है?

वस्सकार : *(आनंद में)* वैशाली? त्रिभुवन-सुंदरी नगरी! क्या कहना है! मैं इस नगरी का पुराना प्रेमी हूँ और उसी प्रेम का फल...! *(बनावटी उदासी लाकर उसाँसें लेता है।)*

अश्वसेन : *(उत्तेजित स्वर में)* हाँ, हाँ, उस नर-पिशाच अजातशत्रु ने इस वैशाली-प्रेम के कारण आपके साथ जो क्रूर व्यवहार किया है, क्या हम वृज्जि उसे भूल सकते हैं? हम इसका बदला एक दिन उससे चुकाकर रहेंगे।

वस्सकार : आह! वह दिन मुझे देखने को मिलता!

अश्वसेन : मिलेगा, ज़रूर मिलेगा! आपका अपमान वृज्जिसंघ के हर नागरिक के दिल में काँटे-सा चुभ रहा है। आपको देखकर किस नागरिक के हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला नहीं धधक उठती? किसकी आँख से खून के आँसू नहीं टपकने लगते? उफ़, उसने आपके सिर के बाल तक मुँड़वा डाले! नरपिशाच!!

वस्सकार : नरपिशाच तो है ही। खैर, उसने बाल मुँड़वा दिए, अच्छा ही किया। मैं भगवान बुद्ध की शरण के समीप तो हो गया। *(अपने गंजे सिर पर हाथ फेरता है)* अब सिर्फ़ भिक्षापात्र की कमी है! *(ऊपर देखकर कुछ मंत्र बुदबुदाता है।)*

अश्वसेन : भिक्षापात्र नहीं, शासन-सूत्र! जब तक आपके हाथ में मगध का शासन-सूत्र नहीं आ जाता, हम चैन नहीं लेंगे। खैर, मज़े से आप हैं न? कोई कष्ट तो नहीं?

वस्सकार : वैशाली में कष्ट? *(कुछ रुककर)* लेकिन मैं अब सोचने लगा हूँ, वैशाली आकर मैंने अच्छा नहीं किया।

अश्वसेन : ऐसा क्यों मंत्रिवर?

वस्सकार : जिसकी पूजा आदमी करे, उससे दूर रहना ही श्रेयस्कर है। दूरत्व हमारी श्रद्धा को मज़बूत करता है, निकटता तो उचाट-सा ला देती है। अतिपरिचियादवज्ञा...

अश्वसेन : तो वैशाली से आपका जी उचट रहा है?

वस्सकार : उचाट ही कहिए। यहाँ कुछ चीज़ें ऐसी देख रहा हूँ, जिससे सोचता हूँ, यहाँ न आना ही ठीक होता। आदमी जिसके साथ हृदय की गहराई से प्रेम करता है, उसमें तनिक-भी त्रुटि देखना पसंद नहीं करता।

अश्वसेन : आपने यहाँ कोई त्रुटि देखी है क्या?

वस्सकार : जाने दीजिए इन बातों को। लकड़ी पर रंदा देने से वह चिकनी होती है, बात पर रंदा देने से वह रुखड़ी ही होती है। आह! कहाँ भगवान बुद्ध के मुँह से तारीफ़ और कहाँ वैशाली के नागरिकों का यह...*(बड़ी लंबी साँस लेता है और गरदन ज़ोरों से हिलाने लगता है।)*

अश्वसेन : यह, यह क्या, बोलिए!

वस्सकार : मत कहलाइए मुझसे आर्य; जाने दीजिए। आइए, हम-आप भी बैठकर संध्या का यह मनोरम दृश्य देखें, जिस तरह सब देख रहे हैं। ज़िंदगी में बहुत चीज़ों के भूल जाने में ही कल्याण है, आर्य!

अश्वसेन : नहीं, नहीं, आपको कहना पड़ेगा।

वस्सकार : अच्छा सुनिए, लेकिन, फिर प्रार्थना है, नाराज़ मत होइएगा। इसी शर्त पर मैं कह रहा हूँ। *(उँगली से दिखाते हुए)* आप उन्हें पहचानते हैं?

अश्वसेन : कौन वह? वह तो वसुबंधु हैं।

वस्सकार : आपसे उनका कोई झगड़ा है?

अश्वसेन : झगड़ा? वैशाली के नागरिक आपस में नहीं झगड़ते।

वस्सकार : कोई खानदानी दुश्मनी?

अश्वसेन : आप यह क्या कह रहे हैं?

वस्सकार : इसलिए न कहा कि जाने दीजिए, मुझसे मत पूछिए। नहीं-नहीं, मुझे वैशाली छोड़ देना चाहिए और किसी अरण्य में जाकर जप-तप करना चाहिए। भगवान बुद्ध! जल्द मुझे अपनी शरण में ले लो। *(झट ध्यानमग्न होने का बहाना करता है, फिर किसी अलक्षित शक्ति को नमस्कार करता-सा दीखता है।)*

अश्वसेन : महामंत्री, आपको यह रहस्योद्घाटन करना ही होगा।

वस्सकार : तो आप धीरज से सुनें, गुस्सा मत हों। न जाने, वसुबंधुजी को आपसे कौन-सी खानदानी दुश्मनी या व्यक्तिगत अनबन है!

अश्वसेन : *(बीच ही में बात काटकर)* मैंने आपको पहले ही कह दिया कि मुझसे उनकी किसी तरह की दुश्मनी या अनबन नहीं है।

वस्सकार : तो क्या उनका कहना ठीक है?

अश्वसेन : क्या?

वस्सकार : मैं कहता हूँ, एक बच्चा भी इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह भी इसे सुनकर कहनेवालों की आँखें झपट्टा मारकर निकाल लेना चाहेगा। आदमी अपनी बहादुरी पर लानत शायद बर्दाश्त भी कर ले, परंतु अपने खानदान पर ...*(दाँत से जीभ काटता है।)*

अश्वसेन : बहादुरी पर लानत! खानदान पर...ऐं *(उसकी भवों पर तेवर चढ़ जाते हैं।)*

वस्सकार : मैंने पहले कहा था, क्रोध मत कीजिए, पहले धैर्य से सुनिए। वीर सुनने में धीरज रखते हैं, जल्दी तो बदला लेने में की जाती है!

अश्वसेन : *(गुस्से से)* क्या वसुबंधु ने मुझे गाली दी है?

वस्सकार : आर्य अश्वसेन, मैं तो इसे गाली से भी बुरी चीज़ समझता हूँ। किसी को कायर कह देना, फिर उसकी कायरता को खानदानी बताना – किसी के मरे हुए बाप-दादों की पगड़ी उछालना, राम, राम!

अश्वसेन : *(उत्तेजना में तलवार खींच लेता है)* बोलिए, मंत्रिवर, उसने क्या कहा? आज यह तलवार उसके सिर पर नाचेगी।

वस्सकार : आह! इसी तलवार पर तो बात चली। कल उनसे मेरी बातें हो रही थीं। मैंने आपकी चर्चा की – कहा, तीर तो सभी चला सकते हैं, लेकिन तलवार के हाथ में अश्वसेन जी का मुकाबला कोई नहीं कर सकता।

अश्वसेन : *(फ़ख्र से)* आपने सही कहा, महामंत्री। वृज्जिसंघ में मेरी तलवार का कोई मुकाबला नहीं कर सकता।

वस्सकार : मैंने खुद देखा है – विजयोत्सव के दिन आपके हाथ के जो करतब देखे, क्या उन्हें कभी भूल सकता हूँ! लेकिन, देखिए, वसुबंधु जी की हिमाकत। आपकी तारीफ़ मेरे मुँह से सुनते ही चिल्ला पड़े...

अश्वसेन : जल्दी कहिए, वह क्या बोला – *(तलवार हिलाता है।)*

वस्सकार : *(ऊपर देखते)* भगवान बुद्ध, मुझसे सच ही कहलाना। *(अश्वसेन से)* वह चिल्लाकर बोले, अश्वसेन तलवार क्या चलाएगा, वह तो कायर है! वही क्या, उसकी सात पुश्त *(रुककर)* माफ़ कीजिए, कहते मुझे शर्म आती है, गुस्से से मेरा बूढ़ा शरीर भी काँप उठता है। *(शरीर कँपाने लगता है।)*

अश्वसेन : काफी है महामंत्री, अब वह देखे कि मैं बहादुर हूँ या कायर; और स्वर्ग में जाकर मेरे बाप-दादों से भी आज़माइश कर ले!

(अश्वसेन तलवार घुमाते उस ओर दौड़ने जा रहा है कि वह उसे रोकने की बनावटी चेष्टा में कहता है –)

वस्सकार : सुनिए, सुनिए!

अश्वसेन : नहीं-नहीं, मैं सुन नहीं सकता! उसने मेरे खानदान...

[वह वसुबंधु की ओर तेज़ी से दौड़ पड़ता है – वसुबंधु प्राकृतिक दृश्यों को देखने में तल्लीन है – उसके पास जाते ही वह बोल उठता है –

'उठो, सँभालो, तलवार निकालो' *— अकारण अपनी मानसिक आनंद-प्राप्ति में बाधा पड़ते देख वसुबंधु भी कुछ क्रोध में आ जाता है, कहता है —]*

वसुबंधु : यह तुम क्या बक रहे हो?

अश्वसेन : बक रहा हूँ? उलटे कहते हो, बक रहा हूँ! *(गरजकर)* सँभलो, तलवार निकालो! *(तलवार उसके सिर पर उठाता है।)*

वसुबंधु : क्या पागल हो गए हो?

अश्वसेन : मैं पागल! पागल! हूँ, तो लो — सँभलो, एक...दो...तीन...

[वह तलवार चलाता है — वसुबंधु हाथ उठाकर तलवार रोकना चाहता है — तलवार लगते ही उसका हाथ कटकर दो टूक हो जाता है — हाथ को काट उसकी खोपड़ी पर तलवार गिरती है। एक चीख के साथ वह ज़मीन पर गिर जाता है — खून का फव्वारा चलने लगता है — उसके गिरते ही, वस्सकार, जो अलग खड़ा तमाशा देख रहा था, वहाँ से गायब हो जाता है — चीख सुन नागरिक उधर दौड़ते हैं और अश्वसेन को पकड़ लेते हैं — थोड़ी देर हलचल रहती है — फिर घायल वसुबंधु और अपराधी अश्वसेन को लेकर लोग संघागार की ओर रवाना हो जाते हैं— सरोवर के घाटों पर सन्नाटा छा जाता है —

झुटपुटे के अंधकार में अंबपाली दिखाई पड़ती है — उसके परिधान में सादगी है — जूड़े पर, हाथों में कुछ फूल के गहने — गले में फूल की हलकी माला — उसके पीछे चयनिका है — अंबपाली चबूतरे पर बैठकर, उदास मुद्रा में कहती है —]

अंबपाली : वैशाली के दिन अच्छे नहीं दीखते, चयनिके! आज जो कुछ हुआ, वह हमारे लिए खतरे की घंटी है।

चयनिका : हाँ, भद्रे, वैशाली में ऐसा दृश्य कभी नहीं देखा गया।

अंबपाली : मुझे तो इस घटना के पीछे किसी के अदृश्य हाथ दिखाई पड़ते हैं। वैशाली के नागरिक अपनी तलवार अपने भाइयों के सिर पर चलाएँ, यह महान आश्चर्य की बात है!

[उसी समय वृज्जिसंघ के महामात्य चेतक दिखाई पड़ते हैं – गोरे रंग के, लंबे वृद्ध पुरुष – सफ़ेद दाढ़ी, सिर से सफ़ेद बालों की लटें कंधे तक लटक रहीं – कंधे से घुटने तक एक सफ़ेद लबादा – चिंता से ओतप्रोत है उनका चेहरा – वह अंबपाली की बातें सुन रहे थे – प्रकट होकर कहते हैं –]

महामात्य चेतक : आपका कहना बिलकुल सही है, आर्ये!

अंबपाली : *(ससंभ्रम खड़ी होती हुई)* महामात्य, आज यह क्या हो गया?

महामात्य चेतक : यह आज नहीं हुआ है, इसके लिए कुछ दिनों से क्षेत्र तैयार किया जा रहा था, देवि।

अंबपाली : कुछ दिनों से?

महामात्य चेतक : हाँ, देवि! वैशाली के जीवन-सरोवर में एक गंदी मछली घुस आई है, हमारे नागरिकों के सम्मिलित परिवार की टोकरी में एक सड़ी नारंगी आ गई है – पानी ज़हरीला बन रहा है, एक-एक नारंगी सड़ती जा रही है!

अंबपाली : उस मछली को निकाल डालिए, उस नारंगी को फेंक दीजिए – आप हमारे महामात्य हैं; आपको सब अधिकार है।

महामात्य चेतक : यही गणतंत्र की दुर्बलता है। आप जानते हुए भी तब तक कुछ नहीं कर सकते, जब तक बहुमत को आप पक्ष में न कर लीजिए। और जो बुरे हैं, वे भले से कहीं ज़्यादा काइयाँ होते हैं न!

अंबपाली : यह अजीब बात!

महामात्य चेतक : हाँ, अजीब बात होने पर भी यथार्थ बात यही है। *(कुछ ठहरकर, बड़ी ही गंभीरता से)* मेरा माथा तो उसी दिन ठनका, जिस दिन सुना कि मगध के महामंत्री वैशाली का पक्ष लेने के लिए निकाल दिए गए हैं और वह वैशाली आ रहे हैं। मंत्री का पद कोई दरबान का पद नहीं है कि आप जिसे आज रखें, कल निकाल दें। योग्यता की सर्वश्रेष्ठता और भक्ति की पराकाष्ठा ही किसी को उस महान पद पर पहुँचा सकती है और वहाँ पहुँचकर आदमी राज्य की इतनी गुप्त बातें जान जाता है कि यदि ऐसा मौका आ गया तो उस पद से हटाने के बाद उसे दुश्मन के घर में जाने का मौका तो दिया ही नहीं जा सकता। दंडित मंत्री का स्थान फ़ाँसी का तख्ता होगा या कैदखाने की कालकोठरी – देशनिष्कासन की गलती तो की ही नहीं जा सकती!

अंबपाली : *(आश्चर्य में)* तो आपको शंका है, मगध के महामंत्री का इसमें हाथ है?

महामात्य चेतक : शंका नहीं, निश्चय है। जब वह वैशाली आए, हमारे नागरिकों के आनंद की सीमा न रही। परम हितैषी, हार्दिक मित्र मानकर उनका धूमधाम से स्वागत हुआ। लोगों में आनंद का ऐसा ज्वार आया था कि वे बुद्धि की बात सुन नहीं सकते थे। मैंने इसमें खतरा देखा, उनके पीछे गुप्तचर रखा। गुप्तचर ने जो खबरें दी हैं, उनका एक प्रत्यक्ष प्रमाण भी आज हमें मिल गया।

अंबपाली : *(आश्चर्य में आँखें फाड़ती)* अरे!

महामात्य चेतक : हाँ, बड़ी चालाकी से उन्होंने जाल बिछाया है। मान लीजिए, दो नागरिक बड़े दोस्त हैं, आपस में घुल-मिलकर बातें कर रहे हैं। उसी समय उनमें से एक को वह अलग बुलाएँगे, यह कहकर कि एक ज़रूरी बात दरियाफ्त करनी है। और उसे बुलाकर महज़ मामूली बात पूछेंगे – 'क्यों जी, लोग खेत जोतते हैं?' 'आज आपने दाल कौन-सी खाई?' 'आप

कितने भाई हैं?' आदि। लेकिन ये बातें भी इस संजीदगी से करेंगे कि उसका साथी सोचेगा, महामंत्री से कुछ गहरी, महत्त्वपूर्ण बातें हो रही हैं। उसके मन में संदेह पैदा होगा। और जब उसका साथी पहुँचकर यह कहेगा कि मगध के महामंत्री ने सिर्फ़ ये मामूली बातें की हैं, उसका संदेह पक्का हो जाएगा – दोनों का दिल टूटेगा, मैत्री बैर में परिणत हो जाएगी!

अंबपाली : *(काँपती हुई)* चालाकी की हद है!

महामात्य चेतक : यही नहीं, धनी-गरीब, ऊँच-नीच, वीर-कायर आदि तरह-तरह के भेदभाव के सवाल उठाकर वह हमारी एकता को छिन्न-भिन्न करने पर तुले हुए हैं। इस हत्याकांड के ठीक पहले आर्य अश्वसेन से उनकी बातें हो रही थीं – ज़रूर, उन्हीं के उकसाने से यह कांड हुआ है!

अंबपाली : और, देखने में कितने साधु लगते हैं, हमेशा बुद्ध भगवान का नाम लेते हैं।

महामात्य चेतक : ऐसे लोग। का साधुपन उनकी ढाल होती है, और भगवान का नाम उनकी तलवार! सीधा शिकार सिर्फ़ शेर करता है, और सभी जानवर, जिनका आदमी सिरताज है, हमेशा आड़ लेकर निशाना लेते हैं, भद्रे!

अंबपाली : महामात्य, संघ का भार आपके सिर है। ऐसे आदमियों से संघ को बचाना आपका कर्तव्य है। आप इन्हें गिरफ़्तार क्यों नहीं करा लेते?

महामात्य चेतक : अगर आज मैं इन्हें गिरफ़्तार कराऊँ, वृज्जिसंघ में हलचल मच जाएगी। यह शहीद बन जाएँगे। इनका पक्ष और विपक्ष लेकर आंदोलन खड़ा होगा। और इसके बाद अजातशत्रु ज़रूर हमारे देश पर चढ़ दौड़ेगा। मुझे तो खबर मिली है, वह इसके लिए तैयारियाँ भी कर रहा है।

अंबपाली : *(आश्चर्य से)* क्या वह वैशाली पर चढ़ाई करनेवाला है?

महामात्य चेतक : मुझे खबर तो यहाँ तक मिली है कि उसने इसके लिए पाटलिग्राम के निकट सेनाएँ इकट्ठी कर रखी हैं, गंगा पार करने के लिए बेड़े तैयार कर लिए हैं और अब सिर्फ़ उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में हैं।

अंबपाली : आह! देवपुरी वैशाली! इस पर राक्षस का शासन होगा? इसे बचाइए, महामात्य! *(व्याकुल-सी हो जाती है।)*

महामात्य चेतक : मैं इसके लिए सयत्न हूँ; पर आपकी ज़िम्मेवारी भी इस बारे में कम नहीं है, आर्ये! जो काम अधिकार से नहीं किया जा सकता, वह प्रेम से आसानी से कराया जा सकता है। आपके पास नौजवानों का दिन-रात प्रवेश है। आप उनकी ओर ध्यान दीजिए। नीति से कला का असर ज़्यादा होता है। और, वह कला व्यर्थ है जो मातृभूमि के संकट-काल में काम न आए। आप अपनी कला का उपयोग इस काम में करें। अगर नौजवानों का हृदय ठीक रहे, उनमें पारस्परिक एकता और प्रेम हो, उनमें आदर्श पर उत्सर्ग होने की भावना बनी रहे, तो फिर उस देश या जनपद को कोई भी पराजित नहीं कर सकता।

अंबपाली : आपने सही कहा, महामात्य! आपकी आज्ञा सिर-आँखों पर। कुछ दिनों से मैं व्याकुल-सी थी – मेरा यह सौंदर्य, यह कला, क्या सिर्फ़ मनोरंजन की चीज़ है? तुच्छ मनोरंजन!!

महामात्य चेतक : मनोरंजन तुच्छ चीज़ नहीं है, भद्रे! मनोरंजन ज़िंदगी की एक अहम ज़रूरत है। जहाँ मनोरंजन नहीं, वहाँ जीवन नहीं। आपके द्वारा वैशाली की तरुण पीढ़ी जीवन पाती रही है – ज़िंदादिली ही ज़िंदगी है, भद्रे! लेकिन हर चीज़ के उपयोग पर सामयिकता की छाप होनी चाहिए। आग रोशनी देती है, जलाती भी है। कला सुलाती है, तो जगाती भी है। आज सतत जाग्रत रहने का समय है। आज उसी कला को जागरण का शंखनाद करने दीजिए।

अंबपाली : *(गर्व-मिश्रित स्वर में)* ऐसा ही होगा, महामात्य! अंबपाली सिद्ध कर देगी, वह गौरी ही नहीं, दुर्गा भी है। वह सोहनी ही नहीं, भैरवी भी सुना सकती है।

महामात्य चेतक : *(आशीर्वादात्मक ढंग से हाथ उठाते)* तथास्तु!

3

[वैशाली का संघागार और उसके सामने का विस्तृत मैदान – संघागार के गुंबदों से शंख और भेरी की ध्वनि हो रही है –

अजातशत्रु की सेना वैशाली पर चढ़ाई करने को आ रही है, उसी का सामना करने के लिए नागरिकों का यह आह्वान किया जा रहा है –

इस ध्वनि को सुनकर धीरे-धीरे नागरिक मैदान में आते हैं – लेकिन इनमें उत्साह का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता – न जयनाद है, न भुजाओं की उछाल – एक-दूसरे को यों देख रहे हैं जैसे पुराना बैर चुकाने का मौका मिला हो – एकाध जगह उत्साह की तरंग देखी भी गई, एकाध बार जयनाद भी हुआ, तो वह निराशा के गहरे गर्त में तुरंत विलीन हो गया–

संघ के महामात्य चेतक संघागार से निकलकर सभामंच पर आते हैं और नागरिकों को देखते हैं – देखते ही उनका चेहरा उतर जाता है – भर्राई आवाज़ में नागरिकों को संबोधित करते हैं –]

महामात्य चेतक : नागरिको, क्या आपको मालूम है, यह शंख क्यों फूँका गया है? यह भेरी क्यों बजाई गई है? हमारे वृज्जिसंघ के पुराने शत्रु अजातशत्रु ने हम पर चढ़ाई की है।

एक नागरिक : क्यों अजातशत्रु हम पर चढ़ाई करेगा?

दूसरा नागरिक : चढ़ाई की है, तो उससे हमारा क्या?

तीसरा नागरिक : क्या हमारी तरफ़ से उसे छेड़ा गया है?

महामात्य चेतक : बस, बस, नागरिको! मैं आज का समाँ देखकर ही दंग हूँ। यही वैशाली है, यही संघागार और उसका मैदान है। शंखनाद होते ही वैशाली के घरों में कोई भी नौजवान नहीं रहता था। सभी अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित यहाँ इकट्ठे हो जाते थे। तीसरी बार भेरी बजते-न-बजते इस विस्तृत मैदान में तिल धरने की जगह नहीं रह जाती थी। नागरिकों के जयनाद, शस्त्रों की झनझन, घोड़ों की हींस और हाथियों के चिंग्घाड़ से आसमान गूँज उठता था। सब कहते थे, संघ पर क्या संकट आया? सब पूछते थे, संघ का कौन दुश्मन है – हम उसका शमन करेंगे, हम उसकी आँख निकाल लेंगे। और आज वही वैशाली– आह वैशाली! *(उनका गला भर आता है।)*

एक नागरिक : लेकिन हमें पूछने का हक है।

दूसरा नागरिक : हमें युद्ध का औचित्य तो मालूम होना चाहिए।

तीसरा नागरिक : हिंसा मानवीय कर्तव्य नहीं, यह राक्षसी वृत्ति है।

[ऐसे सवालों को सुनकर कुछ नागरिक, जिनमें जोश और उत्साह था, लेकिन उमड़ा न था, तमतमाकर खड़े होते हैं – लेकिन, उन्हें बोलने के पहले ही महामात्य चेतक हाथ के इशारे से रोक देते हैं और शांत भाव से कहते हैं –]

महामात्य चेतक : नागरिको, गणतंत्र के मानी ही यह है कि हर नागरिक राज्य के कामों में अपने को हिस्सेदार समझे – अपनी ज़िम्मेवारी निभाए, संघ के पदाधिकारियों से ज़िम्मेवारी वसूल करे। किंतु आज तो अजीब सवाल पूछे जा रहे हैं। संघ ने युद्ध नहीं छेड़ा है कि आप उससे औचित्य का उत्तर माँगें। युद्ध का औचित्य पूछना है, तो आप अजातशत्रु से पूछें– इसीलिए तो संघ ने आपका आह्वान किया है। लेकिन याद रखिए, चढ़ाई करने वाले दुश्मन से आप ज़बान से नहीं पूछ सकते, ऐसी ज़बानों

को वह तराश लेगा। आक्रमणकारी एक ही ज़बान समझता है, वह है प्रत्याक्रमण में उठाई गई तलवार की झनझन या चलाए गए तीर की सनसन की।

[महामात्य के इस कथन पर उत्साही दल में और जोश आ जाता है, उनमें से नागरिक उठकर कहने लगते हैं –]

एक नागरिक : हम तलवार की ज़बान से ही उसे समझाएँगे।

दूसरा नागरिक : हम उसे उसकी गुस्ताखी का मज़ा चखाएँगे।

तीसरा नागरिक : बोलो, वृज्जिसंघ की जय, गणतंत्र की जय, वैशाली की जय।

[जयजयकार करनेवालों की संख्या बढ़ती जाती है – चारों ओर हलचल और सरगरमी दिखाई पड़ती है – जिस नागरिक ने पहले विरोध की आवाज़ उठाई थी, वह आगे बढ़ता, सभामंच के निकट जाता और नागरिकों को सुनाकर कहता है –]

पहला नागरिक : महामात्य, क्या मुझे नागरिकों को संबोधित करने की आज्ञा मिल सकती है?

महामात्य चेतक : निश्चय ही। संघ ने सब नागरिकों को बोलने-चालने का समान अधिकार दे रखा है। बोलिए –

पहला नागरिक : नागरिक भाइयो, हमें अपने गण पर नाज़ है, अपने संघ पर नाज़ है। अपनी प्यारी वैशाली और प्यारे वृज्जिसंघ पर आए संकट को टालने के लिए जो योग न दे, उसकी ज़िंदगी पर लानत! *(कुछ नागरिक उत्साह में* 'वृज्जिसंघ की जय' *चिल्लाते हैं – वह तमककर कहता है)* ठहरिए, अधीर मत होइए, बुद्धि से काम लीजिए। अगर वृज्जिसंघ और वैशाली प्यारी चीज़ हैं, तो आदमी की जान भी कम कीमती नहीं। आदमी की जान संसार में सबसे कीमती चीज़ है – सबसे प्यारी। इसीलिए हम दूसरे की जान लेने और जान देने के पहले थोड़ा सोच लें।

एक नागरिक : तुम कायर हो!

पहला नागरिक : महामात्य, गालियों को रोकिए; किसी को हक नहीं कि वह दूसरे को कायर कहे –

[चारों ओर उत्तेजना का वातावरण – महामात्य हाथ के इशारे से उन्हें शांत करते हैं –]

महामात्य चेतक : नागरिको, आप धैर्य न खोएँ। इन्हें पूरी बात कहने दीजिए। *(पहले नागरिक से)* आप जारी रखें –

पहला नागरिक : मैं कह रहा था, जो काम हम करने जा रहे हैं, उस पर ज़रा गौर से सोच लें। हम अपने गण पर, अपने संघ पर, अपनी वैशाली पर अपने को बलिदान करने जा रहे हैं। वैशाली या वृज्जिसंघ क्या है, अगर वह एक आदर्श का प्रतीक नहीं हो। इस आदर्श के निर्माण के लिए हमारे पूर्वजों ने क्या-क्या नहीं किया! उसी आदर्श को देखकर भगवान बुद्ध ने हमें देवता कहा था। लेकिन, वह आदर्श आज कहाँ है? हम उस उज्ज्वल आदर्श को खोकर ज़मीन पर ढकेले गए देवता – ऐसे हो गए हैं। हमारे नागरिक एक-दूसरे की निंदा करते हैं, एक-दूसरे से मर्म छिपाते हैं, एक-दूसरे की बुराई चाहते हैं, एक को कायर कहते हैं – भिखमंगा बताते हैं –

[कई ओर से आवाज़ें आती हैं – 'यह झूठी बात है', 'बिलकुल झूठ', 'नहीं-नहीं, सही बात', 'उस दिन तुमने मुझे भिखमंगा बताया', 'तुमने मुझे कायर कहा', 'वीर लड़ें, हम कायर क्यों लड़ें?' 'भिखमंगे क्यों लड़ें, जिन्हें धन बचाना है, लड़ें, तुम्हारी ज़बान कट जाए', 'तुम्हारी ज़िंदगी पर लानत!' *]*

महामात्य चेतक : *(ऊँची आवाज़ में)* शांत नागरिको, शांत! *(पहले नागरिक से)* आपको जो कुछ कहना है, शीघ्र कहिए –

पहला नागरिक : भाइयो, मैं इस नाज़ुक मौके पर अब ज़्यादा वक्त नहीं लेना चाहता। सिर्फ़ एक बात कहूँगा। एक तरफ़ तो यह हालत है, दूसरी ओर दुश्मन

को देखें। आप जानते हैं, मगध-सम्राट अजातशत्रु अब पुराना अजातशत्रु नहीं रह गया है। अब वह भगवान बुद्ध का अनुयायी है। दिन-रात गृध्रकूट की ओर उसका ध्यान लगा रहता है। वह आधा भिक्षु बन चुका है। मगध के आधे खून ने उससे ऊधम कराए, अब हमारा रक्त उस पर हावी है। उसके शरीर में जो वृज्जिरक्त है, वह उसे सुकर्म पर ले जा रहा है। फिर वह हम पर क्यों चढ़ाई करेगा? अगर की है, तो ज़रूर हम लोगों ने कुछ उत्तेजना दी है, उसे तंग किया है, लाचार किया है। इसलिए, हमें उसके खिलाफ़ फौज न भेजकर समझौते के लिए दूत भेजना चाहिए, उससे सुलह कर लेना चाहिए — *(बोलकर हट जाता है।)*

एक नागरिक : बहुत ठीक, हम हिंसा से भी बच जाएँगे।

दूसरा नागरिक : तुम दोनों कायर हो, जनद्रोही, गणद्रोही, देशद्रोही!

[फिर नागरिकों में आपस में तू-तू-मैं-मैं मच जाती है — हल्ला-गुल्ला मच जाता है — महामात्य बार-बार उन्हें शांत करने की कोशिश कर रहे हैं।

अचानक लोग अंबपाली को देखते हैं — अजीब है वेश उसका— शरीर पर ज़िरहबख्तर — सिर के लहराते बाल के ऊपर शिरस्त्राण — पीठ पर ढाल, कमर में तलवार लटक रही — एक हाथ में बर्छा, जिसकी फली के नीचे वैशाली का झंडा लहरा रहा — उसे इस रूप में देखते ही सब आश्चर्यचकित रह जाते हैं — आपस का विवाद रुक जाता है, सब चुप हो जाते हैं — इस जमाव को वह आँख घुमाकर देखती है फिर महामात्य की आज्ञा ले, ओजस्वी शब्दों में बोलती है—]

अंबपाली : वृज्जिसंघ के नागरिको, वैशाली के सपूतो! मेरे इस रूप को देखकर आप चकित हो रहे हैं। नारी का यह रूप नहीं, राजनर्तकी के भी अनुरूप नहीं! आपका चकित होना उचित ही है। लेकिन, आप सोचिए

तो कि मुझे यह रूप क्यों धारण करना पड़ा है? क्यों उन हाथों में आज तलवार है, जिनमें कल तक वीणा थी? क्यों उस मस्तक पर शिरस्त्राण है, जिस पर फूलों के गुच्छे लटकते थे? जिस वक्षःस्थल पर कल तक पारिजात की मालाएँ होती थीं, उस पर आज यह ज़िरहबख्तर देखकर आप चकित न हों, यही आश्चर्य है। किंतु, आप सोचिए तो, ऐसा क्यों हुआ?

[वह चुप हो जाती है – चारों तरफ़ सन्नाटा है – सब एक-दूसरे का मुँह देखते हैं – अंबपाली फिर बोलती है –]

नागरिको, आप नहीं बोल रहे हैं। आप शायद नहीं सोच पा रहे हैं? या आप अपने पर शर्मिंदा हो रहे हैं? हाँ, यह शर्म की बात है, लज्जा की बात है कि जब दुश्मन हमारे द्वार पर पहुँच चुका है, जब उसकी तलवार हमारी गरदन छू रही है, उसके तीर हमारी छाती में घुसने को हैं, हम यहाँ विवाद कर रहे हैं कि हम युद्ध करें या नहीं करें, लड़ाई अच्छी चीज़ है या बुरी, इसमें हिंसा है या अहिंसा! हम कितने पतित हो चले हैं और हमारा दुश्मन कितना भला है, इसकी नाप-तौल भी हम आज ही कर लेना चाहते हैं। कैसी आत्मवंचना! आत्महत्या का कैसा सुंदर प्रयत्न!! कहा जाता है, अजातशत्रु आधा भिक्षु हो चुका है। क्या भिक्षुओं की सेना तलवार लेकर चलती है? गाँवों को जलाती है? फ़सलों को रौंदती है और आदमी के खून से ज़मीन को सींचती है?

[लोगों में सनसनी छा जाती है – चेहरों पर गुस्से की झलक स्पष्ट हो जाती है – बाँहें फड़कने लगती हैं – लोगों की इस परिवर्तित भावना को देख जैसे गरम लोहे पर हथौड़े की चोट देती अंबपाली ओजस्वी शब्दों में कहती है –]

यह भी कहा गया है कि अब उस पर वृज्जियों का रक्त हावी है। नागरिको, जिस दिन अजातशत्रु ने – जिसकी कोख से पैदा हुआ, जिसके दूध पर वह पला, उस वृज्जिकुमारी महारानी चेल्लना को तड़प-तड़पकर मरने को लाचार किया, उसी दिन उसके शरीर का वृज्जिरक्त सूख चुका! पितृहंता, मातृहंता के शरीर में भी जो वृज्जिरक्त का प्रवाह देखते हैं, क्या वे वृज्जियों के रक्त का अपमान नहीं कर रहे हैं? वृज्जियों का रक्त देवरक्त है, वह राक्षस के शरीर में बह नहीं सकता!

नागरिकों की आवाज़ें : अजातशत्रु राक्षस है!
वह पितृहंता है।
हम उसे सबक सिखाएँगे।
हम महारानी चेल्लना का बदला चुकाएँगे।

महामात्य चेतक : शांत! शांत! देवि, आप अपनी बात कहें!

अंबपाली : फिर यह कहा गया है, हमने आदर्श खो दिया! ज़रूर खो दिया – जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे सामने है। हममें यह नैतिक पतन! लेकिन, सोचिए,ऐसा क्यों हुआ? कुछ दिन पहले तो यह बात नहीं थी। इन कुछ दिनों में ही यह कौन-सा जादू हो गया! कौन-सा जादू हुआ, किसने यह जादू किया? जिसने भाई के दिल में घुसकर भाई का प्रेम वहाँ से हटाया, जिसने उस दिन अभिषेक-मंगल-पुष्करिणी को खून से अपवित्र करवाया, वह कौन ज़ादू है, वह कौन-सा जादूगर है? *(जिसने विरोध में भाषण किया, उसकी ओर लक्ष्य करती)* बोलिए, इस संघागार के सामने, हिम्मत हो तो उसका नाम बताइए, यह ज़िम्मेवारी आप अपने ऊपर लेते हैं?

[सब नागरिक उस विरोधी नागरिक की ओर देखने लगते हैं – जिन लोगों ने उसके सुर-में-सुर मिलाया था, उनके सिर नीचे होने लगते हैं– खामोशी देख महामात्य बोलते हैं –]

महामात्य चेतक : आर्ये, जादूगर चला गया, अब सिर्फ़ उसका जादू रह गया है, जो हमारे कुछ भोले नागरिकों के सिर चढ़कर बोल रहा है!

नागरिकों की आवाज़ें : वह कौन था?
यह क्या बात है?
उसका नाम बताइए।
हम उसे मज़ा चखाएँगे!

अंबपाली : मज़ा चखाएँगे, तो चलिए, रणभूमि में। वह रणभूमि में ही आपको मिलेगा। लेकिन, अब उसके हाथ में पोथी नहीं होगी, तलवार लेकर वह आपके सामने खड़ा होगा। उसने पीला कपड़ा फेंक दिया होगा, ज़िरहबख्तर पहन लिया होगा। उसके गंजे सिर के पोपले मुँह से मंत्र की बुदबुदाहट नहीं, अब आप राक्षसी चीत्कार सुनेंगे –

नागरिकों की आवाज़ें : आप वस्सकार की बात कह रही हैं?
क्या उसी दुष्ट की यह करामात है?
उफ़ मक्कार!
उफ़ दगाबाज़!

अंबपाली : हाँ, उसी दुष्ट की। देख लीजिए, वह आज आपके बीच नहीं। *(चारों ओर नज़र दौड़ाती है – और लोग भी देखते हैं) क्यों रहे? उसने अपना काम किया और चलता बना। फ़सल बो चुका, अब गया है हँसिया लाने*– हम फ़सल, उसकी हँसिया – हमारी गरदन, उसकी तलवार –

[चारों ओर से आवाज़ें आती हैं — 'हम ऐसा नहीं होने देंगे' — 'हम वैशाली पर अपने को बलिदान कर देंगे' *आदि, फिर* 'वृज्जिसंघ की जय', 'वैशाली की जय', 'अंबपाली की जय' *की ध्वनि-प्रतिध्वनि होने लगती है — लोगों की उमंग देख अंबपाली कहती है —]*

नागरिको, ठीक, वैशाली की जय, वृज्जिसंघ की जय! ये जयनिनाद हमारे हार्दिक उल्लास और मानसिक निर्णय के सूचक हैं, इसलिए वांछनीय हैं, वंदनीय हैं। लेकिन, याद रखिए, जब दुश्मन हमारे सामने है, जब 'हम या वे' के फैसले का वक्त आ पहुँचा है, तो सिर्फ़ हार्दिक उल्लास या मानसिक निर्णय उपयुक्त नहीं होता। उस उल्लास और निर्णय को कार्यरूप देने पर ही उनकी सार्थकता और हमारी सफलता निर्भर करती है! कार्यशक्ति से हीन जयनाद आत्मप्रवंचना है — इसलिए चलिए रणभूमि की ओर, बढ़िए जयभूमि की ओर।

आइए, मैं आपके मस्तक पर विजय-तिलक लगाऊँ। *(मुड़कर)* चयनिके, रोली-चंदन का थाल ला —

[नागरिकों का ठट्ठ उसकी ओर बढ़ता है — सबके सिर पर वह रोली-चंदन लगाती जाती है — उधर संघागार के मुँडेरे से वीरवाणी में वृज्जियों का राष्ट्रगीत गाया जा रहा है —]

जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो ।
हिमगिरि-शृंग-सदृश सिर उन्नत,
गंग-तरंग-सदृश मन निर्मल,
हम निर्मल, निर्भय,
हम उन्नत, गतिमय,
पावन हैं आदर्श हमारे, जीवन गतिमय हो,

जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो ।
जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो।
हम स्वाधीन, स्वतंत्र रहेंगे,
हम न किसी की धौंस सहेंगे,
हम अजेय, अनिवार,
हम रिपु-हित संहार,
विजय हमारी ओर,
शत्रु की ओर प्रलय लय हो,
जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो।

4

[युद्धभूमि का एक अंचल – यहाँ से युद्धभूमि में होनेवाले कोलाहल, जयनाद, चीख-पुकार आदि के शब्द सुनाई पड़ते हैं – युद्धभूमि की एक झलक भी यहाँ से दीख पड़ती है –

घोड़े पर अंबपाली आती है – वही वीर वेश – चेहरे पर पसीने की बूँदें, गर्दगुबार के दाग – शरीर पर खून के छींटे – घोड़े को खड़ा कर युद्धभूमि की ओर देखती है –

दूसरी ओर से एक और घोड़ा आता है – उस पर वैशाली के महामात्य चेतक हैं – बुढ़ापे ने मानो वीरता का बाना पहन रखा है – अंबपाली को देखते ही अपना घोड़ा खड़ा कर देते हैं और कहते हैं –]

महामात्य चेतक : आर्ये सर्वनाश! वृज्जिसंघ की स्वातंत्र्य-पताका गिर गई। *(उनका गला भर आता है।)*

अंबपाली : *(साश्चर्य)* यह क्या हुआ महामात्य!

महामात्य चेतक : हुआ वही जो होना था। हमने अपने फटे कपड़े को सीने की कोशिश की – ऊपर से वह सिला भी दीखता था; लेकिन एक तनाव ने ही उसके तार-तार उधेड़ दिए। ज़मीन की दरार भरती है, राष्ट्र की दरार तुरत नहीं भरती आर्ये! अजातशत्रु की सेना नगर में घुस गई!

अंबपाली : ऐं, नगर में घुस गई? *(महामात्य के चेहरे को एकटक देखती है।)*

महामात्य चेतक : हाँ, घुस गई! अभी खबर मिली है, वह उत्तर से नगर में घुसी आ रही है। दो दीवारें पार कर चुकी, तीसरी कर रही होगी!

अंबपाली : *(आश्चर्य की अधिकता में चिल्ला पड़ती है)* उत्तर द्वार से?

महामात्य चेतक : यही तो तमाशा है, आर्ये! दक्षिण से आनेवाली सेना उत्तर द्वार से प्रवेश कर रही है।

अंबपाली : आह! हमें धोखा हुआ!

महामात्य चेतक : बिना विभीषण के सोने की लंका नहीं जल सकती थी, भद्रे! त्रेता की गलती फिर दुहराई गई और न जाने कितनी बार कहाँ-कहाँ दुहराई जाएगी!

अंबपाली : *(अपना सारा साहस समेटकर)* महामात्य, हम चलें उस ओर, उनके प्रवाह को रोकें।

महामात्य चेतक : जब बाँध टूट जाता है, तब भद्रे प्रवाह के पानी को कोई नहीं रोक सकता। जो ऐसी कोशिश करेगा, वह डूबकर रहेगा। अब हम या तो इस व्यर्थ प्रयत्न में डूब मरें या चतुर किसान की तरह जो कुछ बच सके, उसे बचाएँ और अगली खेती के लिए सामान जुटाएँ।

अंबपाली : अगली खेती?

महामात्य चेतक : हाँ, अगली खेती। फ़सल की तरह राष्ट्र की जड़ भी ज़मीन के नीचे होती है। एक फ़सल बर्बाद हो जाए, दूसरी फ़सल लहराएगी। एक पुश्त गुलाम बन जाए, दूसरी पुश्त आज़ाद होकर रहेगी। दूसरी फ़सल पहली फ़सल की सड़ाँध से खाद पाती है, पहली से भी अच्छी होती है। गुलाम राष्ट्र जब उभरता है, वह उन्नति की उस चोटी पर छलाँग मारकर चढ़ जाता है, जिसके पहली पुश्त के लोग सपने ही देखते थे। लेकिन शर्त एक है!

अंबपाली : वह शर्त क्या है, आर्य?

महामात्य चेतक : उस राष्ट्र के लोग नैतिक बल को खो न दें। जो जन-नायक होते हैं, उनका यह काम है कि ऐसे मौके पर अपने व्यक्तिगत उदाहरण से जनता के नैतिक साहस को ऊँची सतह पर रखें — वह न दबे, फिर कोई नहीं दबेगा! साहस संक्रामक चीज़ है भद्रे! एक का साहस हज़ारों-लाखों में साहस भरता है। शहादत का खून ही वह खाद है, जिसे पाकर राष्ट्र की बेल बढ़ती, फैलती और फूलती-फलती है! हमारा साहस उन्हें भी ऊँचे उठने को प्रेरित करेगा, जो आज पतित, अधम हो चुके हैं।

अंबपाली : *(घृणा से मुँह सिकोड़ती)* वे पतित, वे नीच, रे नराधम! वैशाली उन्हें कभी नहीं क्षमा कर सकती; महामात्य!

महामात्य चेतक : वैशाली के प्रतिशोध लेने के पहले ही अपने हृदय का पश्चाताप ही उन्हें या तो जला डालेगा, या कुंदन बना देगा। गणतंत्र और राजतंत्र की प्रजा में बहुत अंतर है, आर्ये! राजतंत्र की प्रजा कभी कह सकती है — 'काउ नृप होहिं हमहि का हानि।' लेकिन गणतंत्र की प्रजा पर ज्यों ही दूसरों का शासन लादा जाएगा, उसका हृदय विद्रोह कर उठेगा। वैशाली की प्रजा को गुलामी में रखना असंभव है, भद्रे!

अंबपाली : *(कातर स्वर में)* आज तो हम गुलाम हो चुके महामात्य!!

महामात्य चेतक : यह तो अजातशत्रु को कल मालूम होगा। जो अपने बाप को कैद कर सका, कल देखूँगा, वह चेतक को कैसे कैद कर लेता है! *(उनका चेहरा एक अलौकिक ज्योति से दिप उठता है)* कैद होने के पहले कैदी खुद अपने को कैद कर लेता है, आर्ये! जिसकी तबीयत आज़ाद है, उसे कोई कैद नहीं कर सकता। अगर किसी ने ज़बरदस्ती की भी, तो पेट में गए कच्चे अन्न की तरह फिर उसे उगलना पड़ेगा – वह उसे पचा नहीं सकता। अगर यह बात नहीं होती, तो कुछ बलशाली मानव सारे संसार को गुलाम बनाकर रखते।

अंबपाली : वैशाली के महामात्य के उपयुक्त ही ये बातें हैं। मैं तो इसकी कल्पना से ही घबरा रही हूँ।

महामात्य चेतक : जो घबराता है, उसके सामने सबसे पहले भूत आता है, आर्ये!

[युद्धभूमि की चीख-पुकार बढ़ती और नज़दीक आती-सी मालूम पड़ती है – बूढ़े महामात्य 'आर्ये, वैशाली की शान न खोना' *– कहकर घोड़े को फँदाते चल देते हैं – अंबपाली भय-चकित दृष्टि से महामात्य की ओर देख रही है कि एक तीर उसकी ओर सनसनाता आता दिखाई पड़ता है – एक दूसरा घुड़सवार अपने घोड़े को उछालकर झट वहाँ पहुँचता है – उसके घोड़े के धक्के से अंबपाली का घोड़ा ज़रा हट जाता है – तीर उस आगंतुक घुड़सवार के गले में लगता है – वह घोड़े से लटक जाता है – अंबपाली के मुँह से चीख निकलती है – वह उस घुड़सवार को देखने की कोशिश करती है कि तब तक कई घुड़सवार आ जाते हैं – आपस में तलवारें चलने लगती हैं – सब तितर-बितर हो जाते हैं।]*

5

[अंबपाली का वसंतोद्यान – संध्या का समय – बगीचे के बँगले के बरामदे से सटा एक ऊँचा मंच – मंच पर सजी-सजाई फ़र्श – उस पर बैठी अंबपाली आईना सामने रखकर शृंगार कर रही है –

मंच के आगे उद्यान का जो हिस्सा है, उसमे बेला, मोतिया, जूही आदि की पंक्तियाँ कलियों से लदीं – बीच में एक छोटा-सा नकली हौज़ जिसमें पालतू हंस का जोड़ा तैर रहा–

अंबपाली के बगल में चयनिका खड़ी है – चयनिका कभी आसमान को देखती है, कभी अंबपाली के चेहरे को – वह आश्चर्य और विषाद की पुतली बनी हुई है – अंबपाली के चेहरे को पढ़ना उसके लिए मुश्किल हो रहा है – वह ठीक संध्या का प्रतिरूप है, जिसमें दिन-रात, हर्ष-विषाद का निर्णय कठिन हो रहा –

चयनिका की ओर देखकर अंबपाली मुसकराती है – फिर उससे पूछती है –]

अंबपाली : चुन्नी, देख तो, यह मेरा शृंगार कैसा उतरा?

चयनिका : *(नहीं बोलती है, सिर नीचा कर लेती है।)*

अंबपाली : बोल-बोल, शृंगार कैसा उतरा?

चयनिका : *(फिर भी चुप है, सिर और नीचा कर लेती है।)*

अंबपाली : *(प्यार-भरे गुस्से में)* नहीं बोलती? तुझे बताना होगा चयनिके कि आज का मेरा शृंगार कैसा उतरा?

चयनिका : मैं कुछ नहीं समझ पाती, भद्रे!

अंबपाली : तू कुछ नहीं समझ पाती और न समझ सकेगी। अंबपाली की बातें समझ जाना आसान भी तो नहीं है, चुन्नी!

चयनिका : हाँ, आर्ये!

अंबपाली : तू यही न सोच रही है कि कहाँ आज सारी वैशाली में मातम है, रुदन है, हाहाकार है और कहाँ मेरा यह शृंगार, यह प्रसाधन, यह उल्लास, यह हास! क्यों?

चयनिका : हाँ, आर्ये!

अंबपाली : कातर मत बन, चयनिके! अपने को अंबपाली की योग्य अनुचरी सिद्ध कर! देख, मेरा शृंगार अच्छा बना कि नहीं? इच्छा होती है, जितने भी शृंगार और प्रसाधन के सामान हैं, सब आज लाद लूँ, ओढ़ लूँ! *(कुछ रुककर)* जल्दी कर, मगधराज अजातशत्रु अभी यहाँ पधारनेवाले हैं।

चयनिका : मगधराज! अजातशत्रु!

अंबपाली : हाँ, महामात्य ने कहा था, जो डरता है, उसके नज़दीक सबसे पहले भूत आता है! वैशाली में उनकी पहली कृपा मुझी पर हुई है। उन्होंने खबर भेजी है, आज अकेले-अकेले यहाँ पधारेंगे! मगधपति का स्वागत भी तो साधारण साज-सज्जा से नहीं होना चाहिए। वह भी तो देख लें कि इस अलौकिक नगरी की राजनर्तकी कैसी है!

चयनिका : *(कुछ घृणा, कुछ क्रोध से)* मगधपति के स्वागत के लिए?...भद्रे...

अंबपाली : *(हँसकर)* रुकती क्यों है, बोल। आज का सब कहा-सुना माफ़!

चयनिका : *(चुपचाप अंबपाली का चेहरा घूर रही है।)*

अंबपाली : हाँ रे, मगधपति के स्वागत के लिए! राजनर्तकी अपने स्वागत से किसी आगत को कैसे वंचित कर सकती है? हाँ, स्वागत-स्वागत में फ़र्क है। दीपशिखा भी तो पतंग का स्वागत करती है। और उनके स्वागत के दो ही नतीजे होते हैं – या तो पतंग जलेगा, या दीपक बुझेगा। जिस दीपक ने बुझना तय कर लिया, उसकी शिखा जितनी भी तेज़ रहे, उतना ही अच्छा!

चयनिका : *(भर्राई आवाज़ में)* फिर यह आप क्या कह रही हैं, भद्रे

अंबपाली : चयनिके, अंबपाली तय कर चुकी है, जिसे वैशाली नहीं ह[illegible], उसे अंबपाली हराएगी, हराएगी या देख *(अँगूठी दिखाती है)* इ[illegible]ृत को चूसकर अमर बन जाएगी। जो पताका हमारे वीरों ने रणभूमि में गिरा दी, आज अजातशत्रु देखेगा, इस मेरी रंगभूमि में वह कितनी ऊँची लहराती है।

[वह हाथ बढ़ाकर चयनिका की उँगली पकड़ती और उसे खींचकर ठुड्डी पकड़ चुमकारती है, उसके मस्तक पर चुंबन देती है — धुँधलका हो रहा है — एक परिचारिका वहाँ आकर दीप जला जाती है— एक ऊँचे चिरागदान पर कितनी ही दीप-शिखाएँ जगमगा उठती हैं — उनके प्रकाश में अंबपाली का सौंदर्य और चमक उठता है —

दूसरी परिचारिका इसी समय एक अँगूठी लाकर अंबपाली को देती है— अँगूठी पर वह नाम पढ़ती है और कहती है — 'जा, उन्हें बुला ला!' *अजातशत्रु आता है — साधारण नागरिक-सा वेश है उसका — अंबपाली आगे बढ़कर स्वागत करती और मंच पर बिठलाती है —* 'चयनिके! तू भी चली जा, यहाँ कोई न आए' *— कहकर बड़ी ही गंभीर मुद्रा में अजातशत्रु से पूछती है —]*

मगधपति की आज्ञा?

अजातशत्रु : मगधपति मत कहो, राजनर्तकी! मैं मगधपति की हैसियत से यहाँ नहीं आया। मगधपति इस वेश-भूषा में नहीं आया करते।

अंबपाली : क्षमा करें, मुझसे गलती हुई। मगधपति तो धनुष की टंकार और तलवारों की झंकार के साथ आया करते हैं।

अजातशत्रु : मगध को अपने धनुष और तलवार पर कम नाज़ नहीं है, राजनर्तकी! तुम्हारे व्यंग्य में भी सचाई है!

अंबपाली : सिर्फ़ एक बात कहना मैं भूल गई थी; क्षमा कीजिए तो निवेदन करूँ।

अजातशत्रु : तुम्हारे लिए हमेशा क्षमा है।

अंबपाली : क्योंकि मैं नारी हूँ और सुंदरी भी?

अजातशत्रु : तुम सुंदरी हो, इसमें भी सचाई है।

अंबपाली : *(ताने के स्वर में)* और इसमें भी सचाई है कि मगध को धनुष और तलवार के साथ ही अपने महामंत्री वस्सकार पर भी कम नाज़ नहीं।

अजातशत्रु : *(मुसकराते हुए)* तुम वस्सकार पर नाराज़ हो लो राजनर्तकी, लेकिन मंत्री वही है, जो विजय का पथ प्रशस्त करे!

अंबपाली : चाहे जिस घृणित उपाय से हो?

अजातशत्रु : विजय का पथ हमेशा ही कीचड़ से भरा और रक्त से सना होता है। जो गंदगी और खून से डरे, उसे सिर से मुकुट उतारकर हाथ में भिक्षा-पात्र लेना चाहिए।

अंबपाली : *(जैसे निशाना लेकर)* भगवान बुद्ध ने मागधपति को यही शिक्षा दी थी! क्यों?

अजातशत्रु : भगवान ने कुछ दूसरी ही शिक्षा दी थी। *(मुसकराते हुए)* किंतु, एक नन्ही-सी चीज़ ने सब बंटाढार कर दिया, राजनर्तकी! देखोगी वह चीज़?

अंबपाली : कैसी चीज़?

अजातशत्रु : *(हाथी-दाँत पर बनी अंबपाली की तसवीर निकालकर उसके हाथ में देते हुए)* यह है वह चीज़!

अंबपाली : *(आश्चर्यचकित)* ऐं, यह मैं? मेरी...

अजातशत्रु : हाँ; तुम्हारी इस छोटी-सी तसवीर ने ही फिर एक बार पीला कपड़ा उतार फेंकने को लाचार किया, एक बार फिर गंगाजल से धोए हाथों को खून से धोने को बाध्य किया!

अंबपाली : *(भौंचक बनी)* मगधपति!

अजातशत्रु : राजनर्तकी, मगधपति ने ज़िंदगी के इतने चढ़ाव-उतार देखे हैं कि उसने तय कर लिया था – शेष जीवन वह गृध्रकूट पर ध्यान लगाते राजगृह में बिता डालेगा; या राजपाट की झंझटों को दूर फेंक बोधिवृक्ष की छाया में शांति-सुख प्राप्त करने को एक दिन प्रस्थान कर देगा। किंतु, उसके सारे मंसूबे हवा हो गए – उसे छल की शरण लेनी पड़ी, बल का प्रयोग करना पड़ा। किसके चलते? क्यों? इसी छोटी-सी तसवीर ने... *(मुसकराता है।)*

अंबपाली : तो आप राज्य के लिए वैशाली नहीं आए, सौंदर्य के लिए वैशाली आए हैं।

अजातशत्रु : तुमने बिलकुल ठीक कहा।

अंबपाली : सौंदर्य, जो राज्य से भी क्षणिक है!

अजातशत्रु : सौंदर्य, जो राज्य से भी अधिक प्रलोभक, मोहक और आकर्षक है। हर दिव्य वस्तु क्षणिक होती है, राजनर्तकी! फूल की मुसकान, चपला की चमक, इंद्रधनुष की रंगीनियाँ और ओस की चमचमाहट सब क्षणिक है! क्षणिकता दिव्यता की अनुचरी ही नहीं, सहचरी भी है।

अंबपाली : और, मानवता की महत्ता इसी में है कि क्षणिक के पीछे दौड़ा जाए?

अजातशत्रु : क्षणिक के पीछे नहीं, दिव्य के पीछे। हर अच्छी चीज़ के पीछे उसका बुरा पहलू होता है, राजनर्तकी! जन्म के पीछे मरण है, उल्लास के पीछे विषाद, उत्सव के पीछे मातम। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि ज़िंदगी और जश्न – जीवन और उत्सव – को भूलकर हम हमेशा शोक-सागर में गोते लगाते रहें – मातम मनाते रहें!

अंबपाली : *(घृणायुक्त व्यंग्य में)* और इस ज़िंदगी और जश्न के लिए हज़ारों आदमियों का खून बहाएँ, हज़ारों माताओं को निपूती बनाएँ, हज़ारों

युवतियों का सुहाग-सिंदूर धोएँ और हज़ारों मासूम बच्चों की ज़िंदगी को आँसुओं में डुबोएँ!

अजातशत्रु : हाँ, हाँ। राजनर्तकी, इन भावुकता की बातों से तुम अजातशत्रु के दिल को दहला नहीं सकतीं – बल्कि, ऐसा करके तुम उसके दिल में सोई उस राक्षसी को कुरेदकर जगाती हो, जिसे वह मुश्किल से सुला पाता है!

[वह अचानक उठकर खड़ा हो जाता है – इधर-उधर टहलने लगता है – आसमान की ओर बार-बार देखता है – अंबपाली कुछ देर तक उसकी भाव-भंगी देखती है – फिर नज़दीक जाकर कहती है –]

अंबपाली : मगधपति, आसन ग्रहण करें!

अजातशत्रु : नहीं, मुझसे बैठा नहीं जाएगा, सुंदरी!

अंबपाली : 'सुंदरी' कहकर मेरा अपमान न कीजिए।

अजातशत्रु : हाँ, हाँ, समझा, समझा! *(हँसकर)* सुंदरी का आग्रह कोई कैसे टाल सकता है? अच्छा, आओ बैठें। *(अजातशत्रु बैठ जाता है – किंतु अंबपाली खड़ी ही रहती है – अजातशत्रु कहता है –)*
बैठो, सुंदरी!

अंबपाली : क्या नारी सिर्फ़ सुंदरी ही होती है?

अजातशत्रु : हाँ, जो सुंदरी नहीं है, वह नारी नहीं है। ठीक उसी तरह कि जो वीर नहीं है, वह मर्द नहीं है।

अंबपाली : नारी वीर भी हो सकती है!

अजातशत्रु : और मर्द सुंदर भी हो सकते हैं। लेकिन इन दोनों को प्राकृतिक गड़बड़झाला ही समझो, सुंदरी!

[अंबपाली आँखें गड़ाकर अजातशत्रु के चेहरे को देखती है – उसके शीतला के दाग से भरे चेहरे पर अजीब क्रूरता दिखाई पड़ती है – अंबपाली को यों घूरते देख वह हँसकर बोलता है –]

क्यों? मैं कुरूप हूँ, यही न देख रही हो?

अंबपाली : इसके पीछे की चीज़ भी।

अजातशत्रु : तुम मुखमुद्रा पढ़ सकती हो?

अंबपाली : आप शस्त्र चला सकते हैं?

अजातशत्रु : आहा! *(ज़ोरों से हँसकर)* तुम जैसी राजनर्तकी पाकर कोई भी राजसभा धन्य हो सकती है।

अंबपाली : *(उसका अभिप्राय भाँपकर)* आप यों मेरा अपमान नहीं कर सकते।

अजातशत्रु : मैं तुम्हें सम्मान देने आया हूँ। वैशाली-विजेता आज वहाँ की राजनर्तकी अंबपाली से...

अंबपाली : *(बीच ही में बात काटकर)* प्रणय की भीख माँगने आया है! क्या, यही न कहना चाहते थे?

अजातशत्रु : बिलकुल ठीक! उफ़, तुम कितनी बुद्धिमती हो, सुंदरी!

अंबपाली : अंबपाली प्रशंसा की भूखी नहीं है, मगधपति! और वह प्रशंसा भी वैशाली-विजेता के मुँह से! ऐसी प्रशंसा को वह लानत समझती है। घोंसले को उजाड़नेवाले बहेलिए से चिड़िया चुमकार सुनना पसंद नहीं करती।

अजातशत्रु : हाँ, पहले पंख फटकारती है, चंगुल और चोंच चलाती है; लेकिन पीछे पालतू बनकर हाथ पर खेलती है, कंधे पर फुदकती है और सिर पर घोंसला बनाती है। क्यों? *(अजीब उपेक्षा भाव से हँसता है।)*

अंबपाली : *(तमककर)* कोई ऐसी चिड़िया भी हो सकती है, जो पंख पटककर मर जाना पसंद करेगी, लेकिन बहेलिए का अहसान न लेगी।

अजातशत्रु : ऐसी चिड़िया आज तक नहीं देखी गई।

अंबपाली : आदमी सिर्फ़ चिड़िया नहीं है।

अजातशत्रु : मगधपति साधारण आदमी नहीं है।

अंबपाली : अंबपाली भी साधारण नारी नहीं है।

अजातशत्रु : तुम क्या बोल रही हो, सुंदरी?

अंबपाली : आप क्या चाह रहे हैं मगधपति?

अजातशत्रु : मैं क्या चाहता हूँ, इसे कहने की ज़रूरत रह गई? तो सुनो *(दर्प से)* अंबपाली वैशाली-विजेता की राजनर्तकी बनेगी, उसे राजगृह चलने का निमंत्रण देने आया हूँ।

अंबपाली : और, अगर वह नहीं जाए?

अजातशत्रु : अजातशत्रु अगर-मगर नहीं जानता!

अंबपाली : उन्हें जानने को लाचार होना पड़ेगा।

अजातशत्रु : *(आवेश में)* क्या कहा?

अंबपाली : *(लापरवाही से)* मैंने कहा, मगधपति को सोचना पड़ेगा कि अंबपाली अगर मगध जाने को राजी न हुई तो वह क्या करेंगे!

अजातशत्रु : तुम नहीं जानती? *(भवें टेढ़ी करता है।)*

अंबपाली : ज़रा अपनी भवें सीधी कीजिए, मगधपति! यह हम नारियों का ही श्रृंगार है।

अजातशत्रु : *(आगबबूला होकर)* सँभलकर बोलो राजनर्तकी, तुम किसके सामने बोल रही हो।

अंबपाली : उसके सामने, जो मुझसे प्रणय-भिक्षा माँगने आया है। भिखारी को घमंड नहीं शोभता!

[फिर उचककर खड़ा हो जाता है – अजीब उसकी मुखमुद्रा हो रही है– वह बेचैनी से मंच पर टहलने लगता है – कुछ देर तक अंबपाली चुपचाप खड़ी रहती है – फिर विनम्रता के शब्दों में कहती है –]

मगधपति!

अजातशत्रु : *(कुछ जवाब नहीं देता, टहलता रहता है।)*

अंबपाली : मगधपति से मेरा निवेदन है, आसन ग्रहण करें।

अजातशत्रु : *(रुककर, उसके चेहरे पर आँख गड़ाकर)* सुंदरी, तुम्हें याद रखना चाहिए कि वैशाली-विजेता से बात कर रही हो!

अंबपाली : वैशाली-विजेता पर भी जिन्होंने विजय प्राप्त की थी, उनसे भी अंबपाली ने इसी तरह ही बात की थी।

अजातशत्रु : *(चौंककर)* कौन है, जिसने मुझ पर विजय प्राप्त की थी? अजातशत्रु अजेय है राजनर्तकी!

अंबपाली : आह! आदमी अभिमान में अपने-आपको इतना भूल जाता है!

अजातशत्रु : *(आँख गुरेरता है।)*

अंबपाली : मेरा मतलब भगवान बुद्ध से था, मगधपति!

अजातशत्रु : *(कुछ ठंडा पड़ते हुए)* ओहो, अब समझा! हाँ, सुना था, भगवान बुद्ध तुम्हारे आम्रकानन में ठहरे थे। उनसे तुम्हारी बातें हुई थीं?

अंबपाली : सिर्फ़ एक संध्या को नहीं, सात दिनों की सात संध्याएँ उनसे बात करने में मेरी गुज़रीं।

अजातशत्रु : फिर क्या हुआ?

अंबपाली : वही, जो दो समान बलशाली व्यक्तियों की ज़ोर-आज़माई के बाद होता है!

अजातशत्रु : *(आश्चर्य से)* समान बलशाली?

अंबपाली : जी, हाँ। बल सिर्फ़ तलवार और धनुष में नहीं है। मगधपति, कुछ ऐसी ताकतें भी हैं जिनके सामने तलवारें मोम की तरह गल जाती हैं और धनुष तिनके की तरह टूट जाते हैं। आप क्या भगवान बुद्ध के निकट धनुष और तलवार लेकर गए थे?

अजातशत्रु : *(कुछ बोलता नहीं, सोचता है।)*

अंबपाली : *(मुसकराती हुई)* और अंबपाली के पास भी तलवार और धनुष लेकर नहीं आ सके।

अजातशत्रु : तुम इस भ्रम में न रहो कि मैं निःशस्त्र हूँ।

अंबपाली : भगवान बुद्ध ने भी यह कभी न सोचा होगा कि मगधपति साधनहीन होने के कारण उनके पास निःशस्त्र गए थे।

अजातशत्रु : तुम अजीब नारी हो, अंबपाली।

अंबपाली : भगवान बुद्ध ने भी यही कहा था।

अजातशत्रु : उन्होंने और क्या कहा था?

अंबपाली : उनसे मेरी बातें अभी रह गई हैं – वह फिर वैशाली पधारेंगे।

अजातशत्रु : अंबपाली, राजगृह चलो। वहीं गृध्रकूट पर भगवान के दर्शन करना।

अंबपाली : मगधपति, अपने को धोखे में मत रखिए। आप मुझे गृध्रकूट पर भगवान के दर्शन कराने के लिए आमंत्रित करने नहीं आए। भगवान और गृध्रकूट का दिव्य संदेश आपने सुना होता, तो आप यहाँ इस रूप में आते ही नहीं। यहाँ पर आपको बोधिवृक्ष की छाया नहीं, मार की आँधी उड़ा ले आई है।लेकिन सोचिए, सम्राट! जिसकी एक छोटी-सी तसवीर ने आपके शरीर से पीला वस्त्र उतरवाया, नरसंहार पर उतारू कराया, उसका वहाँ सशरीर जाना आपके, राजगृह के और मगध के लिए, क्या मंगल की बात हो सकती है?

[अंबपाली की यह बात सुन वह थोड़ी देर असमंजस में पड़ जाता है; लेकिन फिर जैसे सँभलकर बोलता है।]

अजातशत्रु : मैं अकेला लौट नहीं सकता। *(उसकी आवाज़ भर्राई हुई है।)*

अंबपाली : सभी यही कहते हैं, सभी यही चाहते हैं, लेकिन, एक दिन सभी को अकेले लौटना होता है मगधपति! यही होता आया है, यही होता रहेगा। आपसे पहले एक और मगधपति ने ऐसा ही कहा था...

अजातशत्रु : एक और मगधपति ने? यह दूसरा मगधपति कौन?

अंबपाली : क्या उनकी तसवीर देखिएगा? *(वह झटपट एक मंजूषा से एक तसवीर निकालती और अजातशत्रु को दिखाती है।)*

अजातशत्रु : यह तसवीर तुम्हें कहाँ मिली नर्तकी!

अंबपाली : और आपको वह तसवीर कहाँ मिली मगधपति! मगधपति, आप घबराएँ नहीं; राजनर्तकी का द्वार सबके लिए खुला है! हम यों ही कभी एक जगह अचानक मिलते हैं और यदि हमने सही मार्ग पकड़ा, तो एक दिन हम सभी एक साथ होंगे – अनंत काल तक के लिए। सवाल सिर्फ़ क्षणिक और अनंत के बीच चुनाव का है, सम्राट!

[अजातशत्रु चुप हो जाता है – धीरे-धीरे टहलता है – किंतु, अब उसके चेहरे पर उत्तेजना या रोष की भयानकता नहीं, विषाद और पराजय की भावना है – वह अचानक जैसे कुछ निर्णय कर लेता है और कहता है –]

अजातशत्रु : अंबपाली, तुमने मुझे पराजित किया, मैं आज ही वापस जा रहा हूँ!

अंबपाली : वैशाली-विजेता अंबपाली को यह श्रेय दे रहे हैं, यह उनकी कृपा है!

अजातशत्रु : अजातशत्रु के हृदय में दया, ममता, कृपा, कृतज्ञता आदि कोमल भावनाएँ नहीं हैं, राजनर्तकी! यह सिर्फ़ जय जानता है और अपनी पराजय को जय मानने की क्षुद्रता इसमें नहीं है। लेकिन याद रखना, अजातशत्रु पराजय नहीं बर्दाश्त कर सकता। मुझे वैशाली-विजय को फिर आना पड़ेगा –

अंबपाली : आइएगा, पर अब पहले महामंत्री वस्सकार को नहीं भेजिएगा, सम्राट!

अजातशत्रु : अब उसकी ज़रूरत नहीं रह गई, अंबपाली! वैशाली-विजय का पथ तो प्रशस्त हो चुका है!

[वह झपटकर, तेज़ी से, वहाँ से चल पड़ता है – अंबपाली उसकी पीठ को एकटक देखती रह जाती है – उसके मुँह से शब्द नहीं निकलते, लेकिन उसकी आँखें पुकार-पुकारकर कह रही हैं, यह अजीब पुरुष है!]

चौथा अंक

1

[रात का सन्नाटे का आलम –

वैशाली का एक प्रांतर – बाँस का झोंपड़ा, जिसके आगे बाँस से ही घिरा एक आँगन– झोंपड़े के बरामदे पर एक चिराग टिमटिम कर रहा – झोंपड़े के भीतर भी रोशनी–

झोंपड़े के भीतर, दरवाज़े के सामने, एक खाट पर अरुणध्वज पड़ा है – समूचा शरीर ढँका, सिर्फ़ सिर उघार – बाल बिखरे, चेहरा सूखा, गाल पिचका – नाक कुछ असाधारण तौर से उभर आई – धँसी आँखें बंद –

जिस दिन वैशाली में मगध-सेना घुसी, यह घायल हुआ – जो तीर अंबपाली की ओर आ रहा था, इसी ने अपने ऊपर ले लिया था –

ज़ख्म बढ़ता ही गया – रात-दिन बुखार में रहता है – मधूलिका की लाख कोशिश करने पर भी हालत नहीं सुधरी – आज उसकी हालत सब दिनों से खराब है –

उसके सिरहाने मधूलिका बैठी, अँगुलियों से उसके बालों को सहला रही है – उसके चेहरे से करुणा टपकी पड़ती है – कई दिन के उपवास और अनिद्रा ने चेहरे पर स्याही-सी पोत दी है –

कभी-कभी अरुण की आँखें खुलती हैं – वह छत की ओर देखता है, फिर मधूलिका की ओर देखता है – रह-रहकर हलकी-सी आह उसके गले से निकलती है और आँखें बंद हो जाती हैं –

उसकी आँखें बंद होते ही मधूलिका की आँखों से बड़े-बड़े मोती के दाने-से आँसू टपक पड़ते हैं – किंतु, वह तुरत सँभल जाती है, जिसमें अरुण आँखें खोले, तो उसे आँसू नहीं दीख पड़ें – चिकित्सक कह गए हैं, ज़रा-सा मानसिक धक्का इसकी बिगड़ी हालत को और खराब कर सकता है –

एक बार अरुण आँखें खोलते ही कहता है – 'मधु, पानी' *– मधूलिका झट खाट की बगल में रखी सुराही से कटोरे में पानी ढालकर उसे पिलाती है – पानी पीने के बाद अरुण कहता है –]*

अरुणध्वज : मधु, अब रात कितनी है?

मधूलिका : अभी तीसरा पहरुआ जाग दे गया है।

अरुणध्वज : आह, भोर न जाने कब होगी?

मधूलिका : बस, अब भोर ही तो होगी, घबराओ नहीं।

अरुणध्वज : *(छत की ओर टकटक देखते)* देखती है, मधु? देख, देख, माँ बुला रही हैं।

मधूलिका : यह क्या बोल रहे हो?

अरुणध्वज : हाँ, हाँ, माँ बुला रही हैं – कल मेरी शादी होगी...

मधूलिका : ऊपर मत देखो, आँखें मूँद लो।

अरुणध्वज : आँखें मूँद लूँ? माँ से आँखें मूँद लूँ। पगली, वह मेरी शादी के सपने देखती स्वर्ग गईं। स्वर्ग में मेरे लिए एक दुलहन खोज रखी है उन्होंने। और उनसे आँखें मूँद लूँ?

मधूलिका : सो जाओ, ज़ोर से मत बोलो। वैद्यजी ने कहा है, ज़ोर से बोलने पर ज़ख्म का टाँका टूट जाने का डर है – गले का ज़ख्म है न!

अरुणध्वज : टाँका टूटेगा, तो क्या होगा, रे!

मधूलिका : चुप हो अरुण, सो जाओ।

[मधूलिका उसके बालों में फिर हाथ सहलाने लगती है – अरुण आँख मूँद लेता है – मर्मांतक पीड़ा दबाने की कोशिश की बेचैनी और बेकली उसकी पेशानी पर झलक रही है – मधूलिका की आँखों से आँसू टपकते हैं – थोड़ी देर तक आँखें मूँदे रहता फिर अरुणध्वज आँखें खोलता और मधु से पानी माँगता है – मधूलिका पानी पिलाती है – पानी पीकर छत की ओर देखता, बोलता है –]

अरुणध्वज : मधु, देख! वह माँ क्या कह रही हैं?

मधूलिका : चुप रहो अरुण, वहाँ माँ नहीं हैं।

अरुणध्वज : माँ नहीं हैं? क्या कहा, माँ नहीं हैं? माँ नहीं हैं, तो वह कौन है, रे! *(ऊपर)* क्यों माँ तू नहीं है? *(मधु से)* देख, वह माँ ही तो हैं। पहचान, पहचान –

मधूलिका : चुप रहो, अब अंबा आती होगी।

अरुणध्वज : *(रूठे की आवाज़ में)* अंबा आती होगी! हाँ-हाँ, तू रोज़ मुझे ठगती है– 'चुप रहो, अंबा आती है; चुप रहो, अंबा आती है' – मैं हर बार चुप होता हूँ, किंतु अंबा कहाँ आई?

मधूलिका : इस बार ज़रूर आएगी, तुम चुप तो होओ।

अरुणध्वज : क्यों मधु, अंबा शादी नहीं करेगी? आती है, तो कहना, वह भी स्वर्ग चले। हम तीनों वहीं शादी करेंगे। शादी करेंगे! निश्चिंत सोएँगे! *(अचानक उत्तेजित होकर)* देख मधु, वह अंबा पर तीर...तीर आ रहा है रे, तीर...तीर! *(चिल्लाता है, उठने की कोशिश करता है।)*

मधूलिका : *(उसे पकड़कर सुलाती हुई, तेज़ी से)* तुम नहीं सोओगे? मैं ज़हर खाकर रहूँगी।

अरुणध्वज : ज़हर! *(बेचैनी प्रकट करते हुए)* नहीं, नहीं मधु, मैं सोता हूँ, तू ज़हर मत खा, मधु! तेरे बिना मुझे कौन देखेगा? *(ज़ख्म पर हाथ ले जाते)* आह, दर्द! उफ़!!

मधूलिका : ज़रा दवा ले लो। *(दवा पिलाती है।)*

अरुणध्वज : *(दवा पीकर)* मौसी कब आवेगी मधु?

मधूलिका : वह आती ही होंगी। मैंने रथ भिजवाया है कि वह तुरत रातोंरात आ जाएँ। अब पहुँचती ही होंगी।

अरुणध्वज : तू यह क्या पिला देती है, मधु! मुझे नींद आ रही है। मौसी आवें, तो जगा देना।

[वह आँखें मूँद लेता है – थोड़ी देर बाद उसे नींद आ जाती है – मधूलिका घर से बाहर आती है – रथ का घर्र-घर्र शब्द होता है – मधूलिका उधर चौकन्ना होकर देखती है – देखती है सुमना के साथ अंबपाली आँगन में घुस रही है –]

मधूलिका : तू! *(लपकती हुई)* तू? तू कहाँ से अंबे?

अंबपाली : *(मधूलिका से लिपट जाती है)* तूने मुझे खबर क्यों न की मधु? उफ़, अरुण कहाँ है?

मधूलिका : ज़ोर से मत बोल, उसे अभी नींद आई है।

अंबपाली : सुना कि तू इतने दिनों से यहाँ है? अरुण को यह क्या हुआ? कैसा है वह ज़ख्म?

मधूलिका : यह सब मत पूछ अंबे! दुनिया की यही रीत है। ज़मीन पर अकेला चकोर तड़पता है, आसमान में तारों से घिरा चाँद हँसता है। सबकी अपनी-अपनी तकदीर होती है!

अंबपाली : यह तू क्या बोल रही है, मधु?

मधूलिका : हाँ, अपनी-अपनी तकदीर! तू राजनर्तकी बनी, अरुण पागल बना, मैं भिखारिन बनी। अब अरुण जा रहा है...*(उसकी आँखों से टपटप कुछ बूँदें गिर पड़ती हैं।)*

अंबपाली : हाय, यह क्या? मुझे उसे देखने दे मधु?

मधूलिका : दूसरी गलती मत कर अंबे! वैद्यजी कह गए हैं, अधिक उत्तेजना होने से ज़ख्म का टाँका टूट जाने का डर है। कंठ का ज़ख्म है, अब खून जारी हुआ, तो फिर उसका बचना...

अंबपाली : कंठ का ज़ख्म! यह क्या हुआ? कैसे हुआ?

मधूलिका : यह भी तेरे ही चलते।

अंबपाली : मेरे चलते?

मधूलिका : हाँ, राजनर्तकी बनने से ही तेरा मन न भरा, तो उस दिन तुझे वीरांगना बनने का शौक हुआ था न? उस वैशाली की चढ़ाई के दिन? तेरा वह व्याख्यान? पागल अरुण ने ज़िद की, मुझे घोड़ा मोल ले दो, मैं लड़ूँगा। वह लड़ाई में गया। हमेशा तेरे पीछे-पीछे लगा रहा। शायद एक तीर तुझ पर चला था?

अंबपाली : *(रोती हुई)* अरे, वह अरुण था! हाय-हाय, मैं ही उसकी मृत्यु की वजह... तूने मुझे खबर क्यों न की मधु? आह!

मधूलिका : न खबर की, न करती। *(सुमना से)* मौसी, आपने यह क्या किया? आपको सीधे यहाँ आना था।

सुमना : मैं क्या जानूँ, मधु! मातृत्व मुझे पहले अंबा के घर घसीट ले गया। इसने पूछा, कहाँ? मैंने कहा, मधु ने बुलाया है। तेरा नाम सुनकर ही चौंकी और अरुण की बीमारी का हाल सुनते ही तेरे भेजे रथ पर यहाँ चली आई! विधाता, यह क्या सुन रही हूँ, देख रही हूँ? *(उसका गला भर आता है।)*
[इसी समय घर से कराह की आवाज़ आती है —तीनों चुप हो जाते हैं— 'तुम दोनों बरामदे पर ठहरो' *कहकर मधूलिका दौड़कर भीतर जाती है—]*

अरुणध्वज : पानी, मधु।

मधूलिका : *(पानी देती)* पी लो।

अरुणध्वज : *(पानी पीकर)* अब भोर में कितनी देर है मधु?

मधूलिका : भोर होने ही जा रही है।

अरुणध्वज : मौसी भी नहीं आईं?

मधूलिका : अच्छा बुला लाती हूँ, रथ आ गया है, वह पहुँच गई हैं।

[मधूलिका बरामदे पर जाती है – अंबपाली को इशारे से ठहरने और चुप रहने को कह सुमना को लिए वह घर में जाती है – अंबपाली अपने कान टट्टी से लगाए बरामदे पर खड़ी है – सुमना को देखते ही अरुण का चेहरा खिल पड़ता है –]

अरुणध्वज : मौसी, मौसी, प्रणाम!

सुमना : आह, बेटा! *(वह अरुण से लिपटती और उसका माथा चूमती है।)*

अरुणध्वज : मौसी, कल मेरी शादी है, तुम अच्छी आईं।

सुमना : *(चुप, आँखों में आँसू)*

अरुणध्वज : तुम रोती हो मौसी? मेरी शादी है, और तुम रोती हो! देखो, *(छत की ओर उँगली उठाकर)* वह माँ स्वर्ग से बुला रही हैं। वहीं शादी होगी! तुमने भी कहा न था मौसी, अरुण तू सयाना हुआ, वधू क्यों नहीं लाता?

मधूलिका : मुझसे वादा कर चुके हो न? चुपचाप सोओ, अरुण!

अरुणध्वज : मौसी, मौसी! तुम भी स्वर्ग चलो! मैं चलता हूँ, मधु चलती है, तुम भी चलो! *(छत पर नज़र ले जाकर)* माँ, मैं आया! माँ! आया...आया! *(दोनों हाथ ऊपर फैला देता है)* मौसी, मौसी, छोड़ो मौसी! माँ बुला रही हैं – माँ...माँ...माँ... *(चिल्लाने लगता है, उठने की कोशिश करता है।)*

मधूलिका : *(आँसुओं की धारा में)* अंबा आ रही है अरुण! शांत हो, चुप हो!

अरुणध्वज : *(अंबा का नाम सुनते ही पूर्व-सा ही फिर सहसा शांत होकर)* अंबा आ रही है, मधु? मौसी, अंबा आ रही है?...नहीं, नहीं, अंबा नहीं आएगी...अंबा...मौसी, माँ कहती है, मेरी दुलहन अंबा जैसी है...अंबा

जैसी (मुसकराता है)...नहीं, नहीं, अंबा नहीं आएगी...वह क्यों आए?...वह राजनर्तकी है – 'मधु, मैं राजनर्तकी !अरुण, मैं राजनर्तकी !'...नहीं, अंबा नहीं आएगी?

मधूलिका : मैं कह रही हूँ, तुम ज़रा चुप हो रहो – अंबा आई है ।

अरुणध्वज : *(फिर मुसकराता)* अंबा आई है।...अंबा...आई है! *(चौंककर दरवाज़े की ओर इशारे करता)* हाँ, हाँ, अंबा आई तो...वह अंबा आई...अंबा! अरे, यह क्या? मधु...मधु..मधु... तीर...तीर...अंबा की ओर तीर, ...अंबा की ओर तीर, बचा रे, बचा...तीर... तीर...तीर...

[आँखें फाड़ता चिल्लाता, वह पूरे ज़ोर से उठना चाहता है – मधुलिका और सुमना उसे पकड़ती हैं – दोनों स्त्रियों की आँखों से आँसू बह रहे हैं – इधर इन बातों को सुनकर बरामदे पर अंबपाली ज़ार-बेज़ार हो रही है, उसे हिचकियों पर हिचकियाँ आ रही हैं – लेकिन मुँह से आवाज़ नहीं निकलने देती ।]

सुमना : बेटा, अरुण बेटा ।

अरुणध्वज : *(कुछ शांत होकर)* मौसी...माँ!...मौसी, माँ! माँ, माँ...मौसी, मौसी... *(जैसे फिर वायु का दौरा आ जाए)* देखो, देखो मौसी, अरे, तीर, तीर... अंबा पर, अंबा पर...तीर...तीर...छोड़ो मौसी...छोड़ मधु...तुम नहीं छोड़ती...तू नहीं छोड़ती...छोड़...छोड़...

[अचानक न जाने उसमें कहाँ से ताकत आ जाती है – वह दोनों औरतों को झटके दे देता है और आधा खड़ा हो जाता है – फिर दोनों उससे लिपट जाती हैं – इतने में मधुलिका का ध्यान उसकी गरदन पर जाता है – टाँका टूट जाने से गरदन की पट्टी पर खून की धारा बही जा रही है – मधूलिका चीख उठती है –]

मधूलिका : मौसी, खून। टाँका टूट गया मौसी! हाय! अंबे, अंबे! वैद्य-वैद्य!

[अब अंबपाली से नहीं रहा जाता है – वह घर में घुसती है और 'अरुण-अरुण' चिल्लाती उससे लिपट जाती है – अरुण अंबपाली की आवाज़ सुनते ही ढीला पड़ जाता है, उसको देखते ही, उसकी आँखें चमक पड़ती है – वह बिछावन पर लेट जाता है और उसके मुँह से निकल पड़ता है –]

अरुणध्वज : अंबे, अंबे!

अंबपाली : अरुण, हाय अरुण!

मधूलिका : *(खून से लथपथ पट्टी पर हाथ रखे)* अंबे, वैद्य ला अंबे। जा, जा– अंबे, अंबे!

[अंबपाली उठना चाहती है – अरुण उसका हाथ पकड़ लेता है – उस हाथ को वह अपनी छाती पर खींचकर ले जाता है – आँखों को मूँदते हुए धीमे-धीमे कहता है –]

अरुणध्वज : अंबे, तू आ गई...तू भी चल अंबे...चलेगी...चल *(धीरे-धीरे आँखें खोलते और छत की ओर देखते हुए)* देखती है अंबे... माँ बुला रही है...माँ...माँ...माँ...

[उसके होंठों पर मुसकान की रेखा खिंच जाती है – चेहरे पर एक ज्योति दौड़ जाती है – फिर खुली आँखें खुली ही रह जाती हैं और साँस का चलना एकाएक रुक जाता है – इस ओर सबसे पहले सुमना का ध्यान जाता है – वह चिल्ला उठती है –]

सुमना : हाय, हाय! यह क्या हुआ? अरुण! अरुण!

मधूलिका
अंबपाली } : *(एक साथ ही)* अरुण! अरुण!

सुमना : *(उसकी नाक के सामने हाथ ले जाकर)* सर्वनाश अंबे! अरुण नहीं रहा मधु!

[सुमना और अंबपाली अरुण की लाश से लिपट जाती हैं और 'अरुण, अरुण' चिल्लाती हैं – लेकिन अचानक मधूलिका की मुखमुद्रा गंभीर हो जाती है – वह गंभीरता से बोलती है –]

मधूलिका : सुन, अंबे ! *(ज़ोर से)* अंबे सुन !

अंबपाली : *(आँसुओं से भीगा चेहरा उठाती)* मधु, अरुण ! हाय अरुण !...

मधूलिका : रोने-धोने से न बनेगा अंबे । मैं अब चली !

अंबपाली : मधु ! मधु ! !

मधूलिका : मधु, मधु, नहीं ! मधु चली । यह तेरा बोझ था अंबे । इसकी ज़िंदगी मैंने ढोई, अब लाश तू ढो !

अंबपाली : मधु, मधु ! यह क्या मधु ? ओहो... *(रोती है।)*

मधूलिका : हाँ, जो ज़िंदगी नहीं ढोता, उसे लाश ढोनी पड़ती है अंबे ! तू लाश ढो, तब समझ सकेगी, किसी की ज़िंदगी ढोना क्या चीज़ है ! मैं चली मौसी, प्रणाम !

सुमना : बेटी । बेटी !

[मधूलिका झट घर से निकलती है – तीन-चार डग में ही वह आँगन में आ जाती है – 'मधु-मधु' पुकारती अंबपाली उसके पीछे आती है – मधूलिका मुड़कर – 'ज़िंदगी नहीं ढोई तो लाश ढो' *कहती आँगन से बाहर हो अंधकार में अंतर्धान हो जाती है।]*

2

[अंबपाली का सोने का कमरा – वह पलंग पर लेटी है – एक कोने में धुँधली रोशनी टिमटिम कर रही है – वह बार-बार करवटें बदलती और आखिर आँखें खोलती हुई उठ बैठती है – फिर पलंग के नीचे आकर टहलने लगती है –

थोड़ी देर टहलकर फिर पलंग पर जाती है और सोने की चेष्टा करती है – आँखें मूँदती, करवटें बदलती और हारकर नींद न आती देख, फिर पलंग से नीचे आती है – दीवार पर जो वीणा टँगी है, उसे लेकर बजाने लगती है –

उसका वेश बिलकुल शृंगार-भूषा से हीन है – बाल खुले, चेहरा उदास – करुणा की मूर्ति-सी वह दीख पड़ती है –]

अंबपाली : *(वीणा पर वह गाती है–)*

टूटते जब बीन के हैं तार!
उँगलियों का हो भले नर्तन,
कंठ का स्वर दे मनोहर स्वप्न,
ताल हो, लय हो,
मूर्च्छना हो, मीड़ हो, संगीत की जय हो!
किंतु, फिर उठती नहीं वह प्राणमय झंकार,
जो बहाती जगत में रस-धार,
और लाती ज़िंदगी में भावना का ज्वार!
प्रेम के गुंजार के बदले –
प्रकट होता विषम हाहाकार!
टूटते जब बीन के हैं तार!!

[गाते-गाते उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बही जा रही है – उसी समय चयनिका दरवाज़े से झाँकती और भीतर आती है – वह हौले पाँव आकर उसके पास खड़ी है और अंबपाली रोए और गाए जा रही है – जब गाना समाप्त होता है, चयनिका कहती है –]

चयनिका : देवी, आप अपने से, संसार से इतनी उदासीन क्यों हैं?

अंबपाली : अपने से उदासीनता, संसार से इतनी उदासीनता – दोनों का एक ही मतलब है, चयनिके! जब तक अपने से उदासीनता न हो, संसार से

उदासीनता हो ही नहीं सकती । और संसार के धक्के ही तो अपने से उदासीनता पैदा करते हैं। 'स्व' और 'संसार' का एक अजीब गोरखधंधा आदिकाल से चला आ रहा है! ये एक-दूसरे को प्रभावित किया करते हैं और इनकी क्रिया-प्रतिक्रिया के भँवर में मानव-मन तुच्छ तिनके-सा डूबता-उतरता रहता है! अंबपाली अब तक भँवर के ऊपर नाच रही थी, अब वह उसकी चपेट में गोते खा रही है।

चयनिका : लेकिन क्या अनुचरी को इतना भी हक नहीं है कि वह उस बात को जाने, जिसने वैशाली की राजनर्तकी के विशाल हृदय को भी यों व्यथित, द्रवित कर दिया है!

अंबपाली : तुम्हें सब कुछ जानने का अधिकार है, चयनिके! तू ही है, जिससे मन की बातें कहकर दिल हलका करती आई हूँ! लेकिन दुनिया में कुछ ऐसी बातें हैं, जो कही नहीं जा सकतीं और जिनको न सुनने में ही कल्याण है।

चयनिका : तो देवी रोया करें और मैं चुपचाप देखा करूँ? क्या मैं पत्थर की बनी हूँ, क्या मेरे हृदय नहीं? इससे तो अच्छा है, चयनिका की मुश्क बाँध दें, उसे तहखाने में डाल दें कि वह घुट-घुटकर वहीं मर जाए! *(उसका गला भर आता है, आँखें उमड़ पड़ती हैं।)*

[अंबपाली वीणा को पलंग पर रख देती और हाथ पकड़कर चयनिका को अपने निकट बैठाती है — फिर उसकी ठुड्डी हाथ में ले दुलारती हुई कहती है —]

अंबपाली : पगली, तू ऐसा करेगी, तो मेरी गति क्या होगी? जब नाव डूबती है तो सिर का घास का गट्ठर ही — तुच्छ तिनकों का वह समूह ही — उसके ढोनेवाले के प्राण का रक्षक सिद्ध होता है। कम-से-कम कुछ देर तक उसे पकड़कर वह अपने को बचाए रखता ही है। अंबपाली की नाव

टूट चुकी है, चयनिके! वह अपनी जल-समाधि स्पष्ट देख रही है — जल-समाधि या सम्यक् समाधि! *(सामने दीवार से सटी बुद्ध की मूर्ति पर उसकी नज़र जाती है और वह उसे सिर नवाती है।)*

चयनिका : *(आश्चर्यमुद्रा में)* तो क्या आप बौद्ध-धर्म स्वीकार करने जा रही हैं?

अंबपाली : अब समझ में आई है चुन्नी कि आदमी क्यों विराग लेता है, क्यों भिक्षु बनता है। कुछ लोग तो ऐसे होते हैं जो स्वभाव से ही दुनिया के रागरंग से परे होते हैं। उनका मन प्रशांत सागर होता है, जिसमें कितनी ही नदियाँ पानी डालें, जिसके ऊपर कितनी ही कलाओं से चंद्रमा चमके, लेकिन जिसमें न तो बाढ़ आती है, न तरंगें उठती हैं — *(उँगली से बुद्ध-मूर्ति को दिखाती)* देख, उस ओर! कैसी शाश्वत शांति! कामना या भावना की एक रेखा भी कहीं पाती है?

[वह अचानक रुक जाती है — छत की ओर देखती है — उसके भय-विस्फारित नेत्रों की टकटकी देख चयनिका काँप उठती है — देखते-देखते अंबपाली के गाल आँसुओं से तर हो जाते हैं — चयनिका घबराई हुई कहती है —]

चयनिका : आर्ये, आर्ये! यह आप क्या देख रही हैं?

अंबपाली : *(अपने को सँभालती, आँसू पोंछती हुई)* क्या देख रही थी! अच्छी बात है, चुन्नी, तू नहीं देख पाती । *(कुछ रुककर)* अच्छा, तूने किसी से प्रेम किया है, रे!

चयनिका : *(लज्जा से गड़-सी जाती है)* आर्ये!

अंबपाली : तू संकोच कर रही है । ठीक ही तो । इससे बढ़कर बेवकूफी का सवाल और क्या हो सकता है — 'तूने प्रेम किया है!' जैसे, प्रेम कहने की चीज़ हो। जो ज़बान पर आए, वह भी क्या प्रेम है! हमारे ऋषियों ने कहा है, सुकर्म को जिह्वा पर मत लाओ, जिह्वा पर अग्निदेव हैं, वह उसे जला

देंगे, भस्म कर देंगे। बहुत ही सही चयनिके! कोई भी पावन चीज़ जिह्वा पर नहीं लानी चाहिए! फिर प्रेम! जिह्वा अग्नि है, तो प्रेम बर्फ़। वह तो उसकी आँच से ही गल जाती है! राधा किसी से अपनी प्रेमव्यथा कहने गईं – हाँ उनका मूक प्रेम कितने कवियों की वाणी का शृंगार बन गया और अनंत काल तक बनता रहेगा । यही प्रेम की महत्ता है। इसी वैशाली में रहकर अरुण क्या अंबपाली से अपना प्रेम कहने आया और हमेशा उसके साथ छाया-सी घूमती हुई भी मधूलिका ने अरुण से अपना प्रेम कहा! *(उसका गला भर आता है।)*

चयनिका : भद्रे, यह सब आप क्या कह रही हैं?

अंबपाली : चुप रह चयनिके, चुप रह । मौसी ने कहा था, यह अभिमान नहीं, आत्मवंचना है, अंबे । अब उनके कथन की सचाई मालूम हो रही है। शृंगार, संगीत, उत्सव – ये सब क्या चीज़ें हैं, तू जानती है? यों ऊपर से देखने पर तो आत्म-प्रदर्शन के साधन मालूम होते हैं, लेकिन ज़रा गहरे जा, तो मालूम होगा, इनके द्वारा आदमी अपने को भुलाने की चेष्टा करता है। अपनी शारीरिक त्रुटि को शृंगार से ढँकना चाहता है, अपने हृदय के हाहाकार को वीणा की गुंजार में छिपाना चाहता है और अपने दुख-शोक को उत्सव मे विलीन करना चाहता है ।

चयनिका : *(सिसकियाँ भरती)* भद्रे...भद्रे!

अंबपाली : *(चेहरे से हाथ हटाती है, सारा चेहरा आँसू में भीगा है)* चुन्नी, चुन्नी... समझी, तू सोने को कहेगी! मेरी प्यारी बच्ची, तेरी आज्ञा सिर-आँखों पर! *(उसकी ठुड्डी पकड़ती और चूमती है)* लेकिन, चयनिके, अंबपाली के सोने के दिन चले गए। अब तो उसके कंधों पर एक थाती दे दी गई है! उफ् री निठुर थाती! *(फिर छत की ओर देखती)* मधु-मधु, तू यह क्या कर गई रे! मुझसे यह नहीं ढोई जाती है, मधु! 'जो

ज़िंदगी नहीं ढोता, उसे लाश ढोनी पड़ती है!' काश, तू जान पाती, मैंने ज़िंदगी भी लाश ही की तरह ढोई है!!

3

[वैशाली का कूटागार – एक ऊँचे टीले पर बना एक रमणीक विहार – विहार का पश्चिमी बरामदा – सूरज डूबने जा रहा – डूबते हुए सूरज की इस लाली से बरामदे का यह हिस्सा अजीब सुनहला लग रहा है – बरामदे की एक-एक चीज़ दिप-सी रही है – सूरज की ओर रुख किए ध्यानमग्न बैठे गोरे भगवान बुद्ध तो बिलकुल सोने की मूर्ति-से लग रहे हैं – शरीर में ज़रा भी स्पंदन तक नहीं अनुभव होता –

भगवान बुद्ध से थोड़ी दूर हटकर भिक्षु-प्रवर आनंद बैठे भगवान बुद्ध का चेहरा विमुग्ध होकर निहार रहे हैं –

अंबपाली आती है – बिलकुल सादा है वेश उसका – हौले-हौले भगवान के निकट पहुँच उन्हें सिर झुका मौन-ही-मौन प्रणाम करती और आनंद के इशारे पर कुछ दूर हटकर बैठ जाती है –

कुछ देर में भगवान बुद्ध आँखें खोलते हैं – सूरज की ओर देखते हैं – अंबपाली उठकर फिर उन्हें प्रणाम करती है – वह मुसकरा पड़ते हैं, कहते हैं –]

भगवान बुद्ध : आप आ गईं, भद्रे!

अंबपाली : हाँ, भगवान!

भगवान बुद्ध : आपका यह वेश?

अंबपाली : मैं देख चुकी भगवान, आदमी दो में से एक का ही शृंगार कर सकता है – तन का या मन का ।

भगवान बुद्ध : सबसे बड़ा सत्य वही है, भद्रे, जिस पर आदमी खुद अपने अनुभवों से पहुँचे ।

अंबपाली : लेकिन मेरे – ऐसे अनुभवों से पार होने का दुर्भाग्य किसी को भी प्राप्त न हो, भगवान!

भगवान बुद्ध : *(मुसकराते हुए)* वैशाली की राजनर्तकी और दुर्भाग्य!

अंबपाली : *(खिन्न स्वर में)* भगवान, मुर्दे को काँटों में मत घसीटिए । जो ज़िंदगी भर दीपशिखा-सी खुद जलती और दूसरों को जलाती रही, अगर उसकी भी ज़िंदगी सौभाग्य ही हो, तो फिर दुर्भाग्य कहेंगे किसे, भगवान?

भगवान बुद्ध : जब वासनाओं से विरक्ति आ जाए, तब समझना चाहिए, अंतर का देवता जग उठा!

अंबपाली : अंतर का देवता क्या है, मैं नहीं जानती, भगवान । हाँ, मेरे अंतर में आग लगी है; जो मुझे जला रही है, झुलसा रही है, यह अनुभव करती हूँ । हृदय मे जैसे चिनगारियाँ फूटती रहती हैं; नसों में, शिराओं में खून की जगह जैसे बिजली दौड़ती रहती है! जागरण, जैसे वृश्चिक-दंशन! निद्रा, जैसे शूल-शयन! यह ज़िंदगी है या मौत? *(कातरता से)* मुझे बचाइए, भगवान ।

भगवान बुद्ध : कोई किसी को बचा नहीं सकता, भद्रे! जहाँ आग की लपट है, उसके निकट ही पानी का झरना है । अशांति के कंटक-कानन में ही शांति की चिड़िया का घोंसला है । उस झरने, उस घोंसले को खुद खोजना होता है। दूसरा, ज़्यादा-से-ज़्यादा, रास्ता-भर बता सकता है ।

अंबपाली : जैसे इस मार्ग-दर्शन का कोई महत्त्व ही नहीं?

भगवान बुद्ध : है, तभी तो तथागत को घर छोड़कर जंगल-जंगल की खाक छाननी पड़ी । बड़ी तपस्या, बड़ी साधना के बाद उस मार्ग का पता लगाया है; लेकिन जो मार्ग उन्हें मालूम हुआ, उसका निष्कर्ष सिर्फ़ इतना ही है कि ऊपर का कोई देवता और नीचे का कोई आदमी किसी को निर्वाण या

मुक्ति नहीं दिला सकता । उस मार्ग पर स्वयं चलना होगा, दूसरा कोई उपाय नहीं ।

अंबपाली : आज उसी मार्ग की दीक्षा लेने आई हूँ, भगवान! मार्ग बताइए, मैं चलने को तैयार हूँ ।

भगवान बुद्ध : भद्रे, ज़रा सोचिए, आप यह क्या कह रही हैं?

अंबपाली : सोच चुकी हूँ, भगवान! अच्छी तरह सोच चुकी हूँ । याद है, आपने कहा था – तुम विचित्र नारी हो!

भगवान बुद्ध : *(मुसकराते हुए)* उसकी एक झलक आज भी देख रहा हूँ! निराशाएँ हमें कहीं भी उड़ा ले जा सकती हैं।

अंबपाली : सिर्फ़ निराशा की बात मत कहें, भगवान। निराशा का प्रतिकार अंबपाली जानती है । *अगर भगवान ने उस यात्रा में नर्तकी पर कृपा न की होती,* तो...*(रुक जाती है।)*

भगवान बुद्ध : तो क्या? ज़रा सुनूँ । *(फिर मुसकराते हैं।)*

अंबपाली : *(तेजस्विता के साथ)* जो कायर होते हैं, वे मोड़ पर रुक जाते हैं। जिनके हृदय में साहस है, वे एक पथ पकड़ते और चल देते हैं, चाहे वह पथ जहाँ ले जाए – स्वर्ग या नरक – ये एक ही सिक्के के दो रुख हैं, भगवान!

भगवान बुद्ध : *(गंभीरता से)* सिर्फ़ तेजस्विता बड़ी खतरनाक चीज़ है, आर्ये । उसके मुँह में साधना की लगाम होनी चाहिए, नहीं तो न जाने वह किस अंधगुफा में ले जाकर पटक देगी। राजनर्तकी, सावधान!

अंबपाली : *(प्रकृतिस्थ होकर)* जिसने एक बार प्रकाश की किरण देख ली, उसकी आँखें धोखा नहीं खा सकती हैं, भगवान । इसी से आज वैशाली की राजनर्तकी भिक्षुणी बनने को भगवान के चरणों की शरण में आई है। *(घुटने टेककर सिर झुका लेती है।)*

भगवान बुद्ध : *(साश्चर्य)* भिक्षुणी बनने को।

अंबपाली : हाँ, अंबपाली ने तय कर लिया है कि अब वह अपना शेष जीवन धर्ममार्ग पर चलने और धर्म का संदेश घर-घर पहुँचाने में ही बिताएगी?

भगवान बुद्ध : *लेकिन तथागत के धर्मसंघ में भिक्षुणी का विधान नहीं।*

अंबपाली : क्या कहा भगवान ने? भगवान के धर्ममार्ग में नारियों के लिए स्थान नहीं।

भगवान बुद्ध : नारियों के लिए स्थान नहीं, ऐसा नहीं कह सकते । हर आदमी – स्त्री-पुरुष – तथागत के धर्ममार्ग पर चल सकता है । लेकिन, नारियों के लिए भिक्षुणी बनना...

अंबपाली : *(उत्तेजना में बीच ही में बात काटकर)* उचित नहीं है, यही न कह रहे *थे भगवान? क्या मैं पूछ सकती हूँ, क्यों उचित नहीं है?*

भगवान बुद्ध : उत्तेजित मत हो भद्रे! हर क्यों का जवाब नहीं होता ।

अंबपाली : लेकिन, जिस बात का संबंध किसी की ज़िंदगी से है – उसके अस्तित्व की 'हाँ ' और 'ना' से है, उसे हक हासिल है कि वह ऐसा सवाल करे और यह उचित है कि उसे जवाब दिया जाए।

भगवान बुद्ध : आपको मालूम ही होगा, देवी प्रजावती और राहुल माता यहाँ आई हुई हैं ।

अंबपाली : देवी प्रजावती धन्य हैं जिन्हें भगवान की मौसी होने और उन्हें गोद खिलाने का सुअवसर मिला और राहुल माता यशोधरा तो इतिहास में अमर ही हो चुकीं ।

भगवान बुद्ध : इन दोनों ने भी यही इच्छा प्रकट की थी, किंतु तथागत ने उन्हें 'नाही' कह दी ।

अंबपाली : आपने 'नाही' की होगी भगवान! यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हमेशा से अपने पर अत्याचार होता आया है – साधारण जनों द्वारा

और महात्माओं द्वारा भी। लेकिन, भगवान जिस आसानी से देवी प्रजावती और यशोधरा को 'ना' कह सकते थे और वे मान जा सकती थीं, उतनी आसानी से न तो आप अंबपाली को 'नाहीं' कह सकते हैं और न उसे मना सकते हैं!

भगवान बुद्ध : लेकिन मेरी लाचारी जो है?

अंबपाली : क्या अभागी अंबपाली से भी बढ़कर? *(उसाँसें लेती है।)*

भगवान बुद्ध : आपकी लाचारी?

अंबपाली : *(सहसा उसके चेहरा पर विषाद छा जाता है, आँखें भर आती हैं,गला भर्रा जाता है)* भगवान, मत कहलाइए! आपसे छिपा क्या है? दिन-रात लाश ढोते-ढोते तंग आ चुकी । जब तक जगी रहती हूँ, उसके बोझ से कंधा टूटता, दम फूलता रहता है । एक तो दर्द के मारे नींद नहीं आती, यदि कदाचित आई, तो कंधे का बोझ सीने पर होता है! साँस घुटने लगती है, कलेजा फटने लगता है । चिल्लाना चाहती हूँ, आवाज़ नहीं निकलती, घिग्घी बँध जाती है। व्याकुलता की पराकाष्ठा में जब नींद टूटती है, तो बिछावन, तकिया, सब तर-ब-तर पाती हूँ! भगवान, भगवान, मुझे... *(अपनी हथेली से मुँह ढँककर हिचकियाँ लेती है।)*

भगवान बुद्ध : धीरज, भद्रे, धीरज!

अंबपाली : *(भर्राई आवाज़ में ही)* धीरज की भी हद होती है, भगवान! आह, वही धीरज विधाता नारियों के दिल में दिए होता, जिसे पुरुषों के हृदय में इतनी प्रचुरता से दिया है । जिस आसानी से भगवान राहुलमाता को प्रसूतिगृह में छोड़ भागे, उसी आसानी से राहुलमाता भगवान की 'ना' के बाद भी उन्हें छोड़ पातीं!

भगवान बुद्ध : भद्रे, भावना पर यों न बहें; विवेक से काम लें । ज़रा सोचें – तथागत के धर्म का मध्यम मार्ग तो सबके लिए खुला है, लेकिन जहाँ तक भिक्षुसंघ की बात है...*(रुक जाते हैं।)*

अंबपाली : धर्म का मध्यम मार्ग तो समझी, लेकिन उसका मतलब मार्ग के मध्य में जाकर रुकना नहीं हो सकता, भगवान! फिर अंबपाली जिस राह पर चलेगी, पूरी चलेगी! मध्य में रुक नहीं सकती! बहुत धोखा खा चुकी हूँ भगवान; अब मैं अपने को ज़्यादा धोखा नहीं दे सकती!

भगवान बुद्ध : तब!

अंबपाली : मुझसे मत पूछिए, मुझे इस लाश को उतारना पड़ेगा, भगवान! या तो इसे पीला वस्त्र उतार सकता है, या ...*(अचानक वह अधर की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखने लगती है)* देखिए, भगवान, वह देखिए! मैं बचपन से ही सपने देखती आ रही हूँ, लेकिन, दिन-रात यह सपने का दृश्य! उफ्! मैं इसे ढो नहीं सकती, ज़िंदा रह नहीं सकती । मुझे आत्महत्या के महापाप से बचाइए भगवान! *(उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है; सिर से पाँव तक काँपकर वह चेहरे को हथेलियों से ढँकती फिर ज़मीन पर घुटने टेक अपने हाथों को बुद्ध के चरणों की ओर पसार देती है।)*

भगवान बुद्ध : आर्ये, आर्ये!

अंबपाली : भगवान! भगवान!!

[भगवान बुद्ध उसके इस आत्मसमर्पण से व्याकुल हो जाते हैं — समझ में नहीं आता कि उससे क्या कहें — वह आनंद की ओर देखते हैं — आनंद भगवान का असमंजस देख अंबपाली के निकट आकर उसे उठाते हुए कहते हैं —]

आनंद : आर्ये, उठें । आज आप जाएँ — कल फिर भगवान के दर्शन करें ।

अंबपाली : *(सिर उठाती है, आँखों से आँसू बह रहे हैं)* भगवान, जाऊँ? आपकी यही आज्ञा है?

आनंद : यह भगवान की ही आज्ञा है ।

अंबपाली : हाय रे मेरा दुर्भाग्य! मेरे लिए भगवान आज ही प्रतिमा बन रहे हैं! आह! *(बुद्ध के मुँह की ओर एकटक देखती है – आँसू अनवरत जारी हैं।)*

भगवान बुद्ध : *(गंभीर वाणी में)* भद्रे! श्रद्धा प्रतिमा को भी बोलने को लाचार करती है – उससे वरदान लेती है । तुम अपने पर विश्वास रखो, सभी साधन तुम्हें आप ही प्राप्त होंगे !

[अंबपाली, 'भगवान, भगवान' कह, घुटने टेक, ज़मीन से सिर सटाकर, भगवान बुद्ध को प्रणाम करती है; फिर हाथ जोड़े ही मुड़कर चलती है – सूरज डूब चुका है, लाल आसमान के ललाट पर लाल मंगल तारा चमक रहा है – अंबपाली मुड़ते समय उसे देखकर प्रणाम करती है और हाथ जोड़े ही वहाँ से धीरे-धीरे चल देती है। उसके चले जाने पर भगवान बुद्ध आनंद से कहते हैं –]

आनंद!

आनंद : भगवान!

भगवान बुद्ध : अंबपाली को मैं जानता हूँ, आनंद! इसके संघ में आने से संघ को लाभ ही होगा। नारियों द्वारा तथागत का संदेश घर-घर में ही नहीं, दूर-दूर देशों तक फैलेगा, यह भी मैं देख रहा हूँ । लेकिन मैं आनेवाले दिनों से डरता था। अभी तो ज्वार के दिन हैं, जिसके प्रवाह में सभी गंदगियाँ बह जातीं, धुल जाती हैं, लेकिन जब भाटा आता है, अच्छा पानी भी प्रवाह से दूर होकर गँदला हो जाता है, आनंद! इसीलिए मैं नारियों को संघ में नहीं लेना चाहता था । मुझे डर है, आगे चलकर संघ की यह बड़ी कमज़ोरी साबित होगी और तथागत का धर्म जितने दिनों संसार में रहता, उसके आधे दिनों तक ही रह पाएगा ।

आनंद : तो मना कर दीजिए न!

भगवान बुद्ध : आह! मैं मना कर पाता! मैं देवी प्रजावती को, राहुलमाता को 'नाही' कर सका था, किंतु इसे नहीं कर सका। यह विचित्र नारी है, आनंद!

उस बार इसने कहा था — मैं भगवान बुद्ध पर विजय प्राप्त करूँगी। यह आज सचमुच जीत गई!

4

[सारी वैशाली निस्तब्ध सोई हुई है — सिर्फ़ जाग रहे हैं आकाश में कुछ तारे, जिनकी ज्योति भी उदयाचल की धीमी लाली की आभा से मंद पड़ती जाती है — और वृक्षों पर जग पड़े हैं अपने खोंतों में निश्चिंत सोए कुछ पंछी — हाँ, कुछ ही और वे भी एकाध बार ही चोंच खोलकर चहचह कर उठते हैं, क्योंकि अभी भोर होने में कुछ देर है — पृथ्वी पर कभी-कभी, यहाँ-वहाँ से गायों की रँभाई सुनाई पड़ती है, जिसका उत्तर बछड़े का आँ-आँ देता है —

अट्टालिकाएँ सोई हुई हैं — सड़कें सोई हुई हैं — हाट-बाज़ार सब पर नींद की हलकी छाया पड़ी हुई है — हाँ हलकी ही, क्योंकि उषा के आगमन की धमक कुहेलिका की तहों को एक-एक कर दूर कर रही है —

इसी समय दूर से सुरीली आवाज़ सुनाई पड़ती है — वह पहले एक ध्वनि मालूम पड़ती है; किंतु धीरे-धीरे वह ध्वनि, ध्वनि-समूह में बदल जाती है — अब स्पष्ट मालूम हो रहा है, कुछ कोकिलकंठी गाती हुई आ रही हैं — गीत की कड़ियाँ क्रमशः स्पष्ट होती जा रही हैं—]

बहुजन हिताय,
बहुजन सुखाय,
    नर उठो, नारियो, उठो उठो,
    झाँकी यह झिलमिल स्वर्ण-किरण
निद्रा खोने, तंद्रा धोने —
    बह चली पुलकमय मलय-पवन
सब उठो, जगो

निज कर्म लगो
सपनों की दुनिया दूर जाए ।
बहुजन हिताय,
बहुजन सुखाय।
दुनिया उभचुभकर डूब रही,
फैला आँसू का प्रलय-ज्वार
आँहों की आँधी में उजड़ी
जाती मानवता की बहार
आगे बढ़कर
करुणा से भर
रच तो रक्षा के कुछ उपाय ।
बहुजन हिताय,
बहुजन सुखाय।
हम सागर यदि न उलीच सकें
आँखों की दो बूँदें हर लें,
हम पर्वत उठा सकें न अगर,
बोझे तो सिर के कम कर दें,
अर्पित जीवन
अर्पित जन-धन
अर्पित होवे मन-वचन-काय।
बहुजन हिताय,
बहुजन सुखाय ।

[अब वह मंडली बिलकुल निकट आ चुकी — इधर आसमान में लाली ही लाली है — अंधकार धीरे-धीरे दूर हो रहा है — उदित होने वाले सूरज

की प्रभा के कारण या सामने आनेवाली कलकंठियों की शांता मुखाभा के कारण? — अब हम स्पष्ट पहचान सकते हैं कि ये कौन हैं — सब-की-सब भिक्षुणियाँ हैं — टुकड़े-टुकड़े जोड़कर बनाए पीले वस्त्र से, गरदन से पैर तक, इनके अंग ढँके हैं — जिनके बाल कटा डाले गए हैं, ऐसे सिरों पर पीले रंग के ही छोटे-छोटे कपड़े, रूमाल की तरह, सिर के पीछे की ओर बँधे हैं — काले रंग के भिक्षा-पात्र हाथों में — अगली पंक्ति में ये तीन भिक्षुणियाँ कौन हैं? ज़रा गौर से देखिए — बीच में हैं देवी पुष्पगंधा — उनकी दाहिनी ओर अंबपाली — बाईं ओर मधूलिका— हाँ, मधूलिका ही — भिन्न अवस्थाएँ, भिन्न प्रकृतियाँ सिमटकर एक हो चली हैं — 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के एक पथ पर, एक उद्देश्य पर। सूरज की किरणें फूटीं — पीले वस्त्रों के बीच अंबपाली के शांत मुख-मंडल पर वे जा पड़ीं — जा पड़ीं, नृत्य कर उठीं — फिर प्रतिफलित हुईं — अब अंबपाली का मुखमंडल सूर्यमंडल-सा दिप रहा है — हाँ, साक्षात् सूर्यमंडल-सा! भिक्षुणियाँ गाए जा रही हैं —]

बहुजन हिताय,
बहुजन सुखाय।

  हम सागर यदि न उलीच सकें
  आँखों की दो बूँदें हर लें,
हम पर्वत उठा सकें न अगर,
  बोझे तो सिर के कम कर दें,
  अर्पित जीवन
  अर्पित जन-धन
  अर्पित होवे मन-वचन-काय,
बहुजन हिताय,
बहुजन सुखाय।

शब्दार्थ और टिप्पणियाँ

अगड़धत्त	–	लंबा-तगड़ा, ऊँचा
अनहद	–	आघात रहित, जो आघात से उत्पन्न न हो
अरुंधती	–	वसिष्ठ ऋषि की पत्नी, सप्तर्षि मंडल के समीप एक छोटा तारा
अर्हत	–	पूज्य, परम ज्ञानी, प्रसिद्ध, बुद्ध
अर्घ्य	–	पूजा में देने योग्य वस्तु
अवदात	–	उज्ज्वल, चमकदार
आत्मवंचना	–	अपने को धोखा देना, अपने दोष को गुण रूप में देखना
उच्छेद	–	जड़ से उखाड़ना, नाश, उन्मूलन
उत्सर्ग	–	त्यागना
उभय	–	दोनों
ऐरावत	–	इंद्र का हाथी
कलंगी	–	टोपी, पगड़ी में लगाया जाने वाला तुर्रा या फुंदना, सिर का एक गहना
कारचोबी	–	गुलकारी या कशीदे का काम
किल्विष	–	पाप, अपराध, रोग
कुररी	–	मादा क्रौंच पक्षी, मादा टिटिहरी, गिद्ध जाति की एक चिड़िया
कुहेलिका	–	कुहरा
कृतिका	–	सत्ताईस नक्षत्रों में से तीसरा नक्षत्र, चंद्रमा की पत्नी
खोंता	–	घोंसला

गर्क — डूबना
गिद्रव — भँवर
गृध्रकूट — राजगृह के पास का एक पर्वत
घूर्णि — चक्कर खाना, घूमना
चुन्नी — माणिक या लाल का टुकड़ा या नग से युक्त
चैत्य — बौद्ध संन्यासियों के मठ
छौने — शावक, छोटे बच्चे
जह्नु — एक राजर्षि का नाम जिसने गंगा को पी लिया था
ज़िरहबख़्तर — फौलादी कड़ियों से बना हुआ कवच, लोह का कवच
जेवनार — भोज, दावत
ठट्‌ठ — वस्तुओं और लोगों का जमाव, समुदाय, भीड़
तुमुल — जिसमें शोरगुल हो, कई तरह की ध्वनियों के मेल से उत्पन्न (ध्वनि)
तूणीर — तरकश, बाण रखने का चोंगा
दरियाफ़्त — ज्ञात, मालूम
दाड़िम — अनार, इलायची
निर्धूम — धुएँ से रहित
नौबतखाना — नौबत (मंगल आदि सूचित करने वाला बाजा) बजाने का फाटक के ऊपर का कमरा या स्थान
पंचकन्या — वे पाँच स्त्रियाँ जो कन्या के समान पवित्र मानी गई हैं – अहल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा और मंदोदरी ।
पंडुक — कबूतर की जाति का एक पक्षी
पाटंबर — रेशमी वस्त्र
पारिजात — पाँच देववृक्षों में से एक, हरसिंगार, कचनार, सुगंध

पीट वस्त्र	—	मोटा वस्त्र
पुष्करिणी	—	कमलयुक्त जलाशय, झील
प्रत्याक्रमण	—	आक्रमण के बदले किया जाने वाला आक्रमण
प्रवर	—	प्रधान, श्रेष्ठ, ज्येष्ठ
प्रशस्ति	—	प्रशंसा, स्तुति, प्रशंसासूचक वाक्य या पत्र
प्रहेलिका	—	पहेली
बजड़ा	—	कमरेदार बड़ी नाव
भैरवी	—	प्रातःकाल गाई जाने वाली एक रागिनी
मंजिष्ठ	—	गहरा लाल, एक लता जिसकी जड़ों और डंठलों को उबालकर लाल रंग निकाला जाता है ।
महामात्य	—	प्रधानमंत्री, अत्यंत माननीय (किसी स्वतंत्र नरेश या सम्राट के लिए प्रयुक्त सम्मानसूचक शब्द)
मानी	—	तात्पर्य
मुखातिब	—	संबोधन करने वाला, बात करने वाला
मुमानियत	—	निषेध, रोकना
मुश्क	—	बाँह, कँधे और कोहनी के बीच का हिस्सा
रोहणी	—	सत्ताईस नक्षत्रों में से चौथा नक्षत्र, यह रथ के आकार का और पाँच तारों से बना माना जाता है ।
लोहित	—	लाल
विषण्णता	—	उदासी
वृश्चिक	—	बिच्छू
व्यायुत	—	हल्के पीलेपन से युक्त, खड़िया के रंग जैसा
शिरस्त्राण	—	लोहे का टोप, युद्ध के अवसर पर अस्त्र-शस्त्र से सिर के रक्षार्थ पहना जाता है ।

शीराज़ा	–	प्रबंध, पुस्तक और पुट्ठों पर की जाने वाली सिलाई
सप्तर्षि	–	सात ऋषि – महाभारत के अनुसार मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वसिष्ठ आदि सात तारों का मंडल
सोहनी	–	एक रागिनी का नाम
हर्षवर्धन	–	खुशी या प्रसन्नता की अधिकता

प्रश्न-अभ्यास

1. **अंबपाली** नाटक का कथानक संक्षेप में अपने शब्दों में लिखिए।
2. **अंबपाली** नाटक के कथानक में कल्पना और इतिहास का सुंदर समन्वय है – इस कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
3. सिद्ध कीजिए कि **अंबपाली** एक चरित्र प्रधान नाटक है।
4. **अंबपाली** नाटक के आधार पर अंबपाली की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।
5. **अरुणध्वज निर्धूम जलता प्रेमदीप है** – इस कथन के आधार पर अरुणध्वज के चरित्र का विवेचन कीजिए।
6. **अंबपाली** नाटक में अंबपाली के अतिरिक्त किस पात्र ने आप को सर्वाधिक प्रभावित किया है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
7. **महान ही महान की महत्ता समझता है। अंबपाली को भगवान ने ही पहचाना** – अंबपाली के इस कथन के आधार पर भगवान बुद्ध की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
8. निम्नलिखित पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए –
   मधूलिका, अजातशत्रु, पुष्पगंधा, वस्सकार।
9. वृज्जिसंघ का प्रजातंत्र भारत संघ के प्रजातंत्र का ही प्रतिनिधित्व करता है – इस कथन के बारे में अपने विचार प्रकट कीजिए।
10. वर्तमान काल की परिस्थितियों के संदर्भ में **अंबपाली** नाटक की क्या प्रासंगिकता है?
11. **अंबपाली** नाटक में नाटककार ने पुरानी कथा के माध्यम से आधुनिक काल की समस्याओं को व्यक्त किया है। कैसे?
12. **अंबपाली** नाटक में स्त्री-चेतना की किन विशेषताओं की अभिव्यक्ति हुई है?
13. **अंबपाली** नाटक में स्त्री-शक्ति के किन रूपों के दर्शन होते हैं?
14. नाटक के तत्त्वों के आधार पर **अंबपाली** नाटक की समीक्षा करें।

15. **अंबपाली** नाटक की संवाद योजना पात्रों के अनुकूल है—इस संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।
16. संवाद नाटक के प्राण होते हैं — इस कथन के आधार पर **अंबपाली** नाटक की संवाद-योजना का विश्लेषण कीजिए।
17. **अंबपाली** नाटक की भाषिक विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
18. आपकी दृष्टि में नाटककार इस नाटक में तत्कालीन देश-काल और वातावरण निर्माण में कहाँ तक सफल हुआ है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
19. **अंबपाली** नाटक की रंगमंचीय संभावनाओं और सीमाओं का विवेचन कीजिए।